UPSC All India General Study Mains Test Series

Test code: 2024/01 (Model Answer Hindi Language)

Test: 01

GS II: Indian Polity / भारतीय राजव्यवस्था

निर्धारित समय – तीन घण्टे *Time Allowed: Three Hour*	*अधिकतम अंक : 250* *Maximum Marks: 250*

प्रश्न-पत्र सम्बन्धी विशेष अनुदेश

कृपया प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व निम्नलिखित प्रत्येक अनुदेश को ध्यानपूर्वक पढ़ें

कृपया प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व निम्नलिखित प्रत्येक अनुदेश को ध्यानपूर्वक पढ़ें : कुल बीस प्रश्न दिए गए हैं जो हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में छपे हैं। सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

प्रत्येक प्रश्न/भाग के लिए नियत अंक उसके सामने दिए गए हैं।

प्रश्नों के उत्तर उसी माध्यम में लिखे जाने चाहिए, जिसका उल्लेख आपके प्रवेश पत्र में किया गया है, और इस माध्यम का स्पष्ट उल्लेख प्रश्न- सह उत्तर (क्यू.सी.ए.) पुस्तिका के मुख पृष्ठ पर निर्दिष्ट स्थान पर किया जाना चाहिए। उल्लिखित माध्यम के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम में लिखे गए उत्तर पर कोई अंक नहीं मिलेंगे।

प्रश्न संख्या 1 से 10 तक का उत्तर 150 शब्दों में तथा प्रश्न संख्या 11 से 20 तक का उत्तर 250 शब्दों में दीजिए ।

प्रश्नों में इंगित शब्द सीमा को ध्यान में रखिए ।

प्रश्न- सह उत्तर पुस्तिका में खाली छोड़े गए कोई पृष्ठ अथवा पृष्ठ के भाग को पूर्णतः काट दीजिए ।

1. "Constitutional Morality is firmly anchored within the Constitution and is built upon its fundamental principles. Elucidate the concept of Constitutional Morality by citing pertinent judicial rulings."

'संवैधानिक नैतिकता' संविधान के भीतर मजबूती से निहित है और इसके मौलिक सिद्धांतों पर आधारित है। 'संवैधानिक नैतिकता' की अवगति कराने के लिए संबंधित न्यायिक निर्णयों को उद्धरण देकर 'संवैधानिक नैतिकता' की अवधारणा को स्पष्ट करें।"

उत्तर –

संवैधानिक नैतिकता का मूल अर्थ यह है कि एक लोकतंत्रिक देश में संविधान के मूल सिद्धांतों और मौलिक मूल्यों का पालन किया जाना चाहिए, और इसे समर्थन देना चाहिए ताकि समाज में सामाजिक और नैतिक न्याय स्थापित किया जा सके।

डॉ. बी. आर. अंबेडकर के परिप्रेक्ष्य में, संवैधानिक नैतिकता का अर्थ था कि संघर्ष और सहमति के माध्यम से विभिन्न समूहों के बीच सामाजिक और नैतिक मूल्यों का सहमति से पालन किया जाना चाहिए, बिना किसी टकराव या आपसी विरोध के। यह एक लोकतंत्र में सहमति, सहयोग, और संघर्ष के माध्यम से विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक समृद्धियों को संघटित करने का तरीका है, ताकि सभी नागरिकों का उत्तरदायित्व हो सके और समाज में समानता बनी रह सके।

संवैधानिक नैतिकता के माध्यम से समाज में सामाजिक और नैतिक सुधार करने के लिए लोगों को संविधान के मूल आदर्शों का समर्थन और पालन करने की दिशा में मार्गदर्शन किया जाता है, जिससे समृद्धि, सामाजिक न्याय, और सामरिकता को बढ़ावा मिलता है।

इस तथ्य के बावजूद कि संविधान में "संवैधानिक नैतिकता" शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है, यह संविधान के कई पहलुओं में निहित है, जिनमें शामिल हैं:

- प्रस्तावना: जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों को रेखांकित करती है।
- मौलिक अधिकार
- मौलिक कर्तव्य
- राज्य के नीति निर्देशक तत्व

देश के कानून के शासन के सिद्धांत को संवैधानिक नैतिकता के विचार द्वारा संरक्षित और बरकरार रखा गया है। यह इस अंतर और गैर-समरूपता को स्वीकार करता है और विविधता को प्रोत्साहित करता है, जिससे समाज अधिक समावेशी हो जाता है। यह लोगों को व्यवस्था में शामिल होने और असमानता और गैर-संवैधानिक तत्वों से लड़ने के लिए भी प्रोत्साहित करता है।

संवैधानिक नैतिकता के सिद्धांत पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला

- **केशवानंद निर्णय:** 1971 में केशवानंद फैसले में संवैधानिक संरचना के मूल सिद्धांत का विवरण किया गया था।
- **कृष्णमूर्ति मामले में (2015)** सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि लोकतंत्र के लिए संवैधानिक नीति की पुष्टि के माध्यम से सच्ची अनुशासन, सकारात्मक संपत्ति, निष्ठावान अनुशासन और संवैधानिक संरचना के मूल स्तंभ को सफल प्रशासन का आधार माना जाना चाहिए।
- **न्यायमूर्ति के. एस. पुट्टास्वामी मामले (2018) में:** यह पुष्टि की गई है कि निजता का अधिकार भारत के संविधान के तहत एक मौलिक अधिकार है.
- **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के मामले (2018)** में, न्यायालय ने संवैधानिक नैतिकता को दूसरे बुनियादी संरचना सिद्धांत के बराबर बताया।

- **इंडियन यंग लॉयर्स एसोसिएशन केस (सबरीमाला केस) 2018** में सुप्रीम कोर्ट ने संवैधानिक नैतिकता की सर्वोच्चता को बनाए रखने के लिए अनिवार्यता के सिद्धांत (एक समुदाय के 'अभिन्न' धार्मिक प्रथाओं की रक्षा करने वाला सिद्धांत) को दरकिनार कर दिया.

निष्कर्ष

संवैधानिक नैतिकता संवैधानिक कानूनों के प्रभावी होने के लिए आवश्यक है। संवैधानिक नैतिकता के बिना, संविधान का संचालनबाधित हो जाता है। हालांकि, संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा हमेशा सुप्रीम कोर्ट द्वारा हर उदाहरण पर तय नहीं की जानी चाहिए। यह एक ऐसा विचार है जिसे जनता के मन में रखा जाना चाहिए।

2. After the enactment of the Constitution, several judicial decisions and constitutional amendments have changed the balance between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy. Analyse. संविधान के लागू होने के पश्चात् से अनेक न्यायिक निर्णयों और संविधान संशोधनों ने मूल अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के मध्य के संतुलन को परिवर्तित कर दिया है। विश्लेषण कीजिए।

मौलिक अधिकारों की प्रवर्तनीयता, और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के गैर-प्रवर्तनीय होने की प्रकृति के बावजूद, राज्य के नैतिक दायित्व के कारण दोनों के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है। मौलिक अधिकार राज्य की नकारात्मक भूमिका का वर्णन करते हैं, और राज्य को कुछ कार्य करने से रोकते हैं। वही निर्देश नीति राज्य की सकारात्मक भूमिका का वर्णन करती है और उम्मीद करती है कि राज्य लोक कल्याण के लिए विशिष्ट प्रयास करेंगे। संविधान लागू होने के समय से ही विभिन्न न्यायिक निर्णयों और संवैधानिक संशोधनों द्वारा मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों के मध्य संबंधों की प्रकृति को संशोधित करने का प्रयास किया गया है |

- **मूल अधिकार सर्वोच्च किन्तु संशोधनीय:** मद्रास बनाम श्रीपति चंपकम दोराईराजन मामला (1952) मौलिक अधिकारों और डीपीएसपी (DPSP) के बीच विवाद से संबंधित पहला विवाद है। जिसमें सुप्रीम कोर्ट द्वारा एक निर्णय दिया गया था कि दोनों के बीच किसी भी विवाद के मामले में, केवल मौलिक अधिकार प्रभावी रहेंगे। हालाँकि, यह भी निर्धारित किया गया था कि संवैधानिक संशोधन अधिनियमों के तहत संसद द्वारा मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए मौलिक अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है।
- **मूल अधिकार अलंघनीय:** गोलकनाथ वाद (1967) में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद किसी भी मूल अधिकार (जिनकी प्रकृति अलंघनीय है) को समाप्त या सीमित नहीं कर सकती है। इसका अर्थ यह है कि निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए मूल अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता है।
- **मूल अधिकार संशोधनीय और कुछ निदेशक तत्वों लागू करने वाले कानूनों को कुछ मूल अधिकारों पर वरीयता:** गोलकनाथ वाद में निर्णय की प्रतिक्रिया स्वरूप, संसद द्वारा 24वां संशोधन (1971) और 25वां संशोधन (1971) लागू किया गया।
    1. 24 वें संशोधन ने स्पष्ट किया कि संसद को मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने की शक्ति है।
    2. 25वें संशोधन के तहत एक नया अनुच्छेद 31C अंतःस्थापित किया गया, जो यह प्रावधान करता है कि अनुच्छेद 39(b) और 39(c) के तहत निदेशक तत्वों को लागू करने वाली किसी विधि को इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है। साथ ही, यहप्रावधान भी किया गया कि इस प्रकार की विधि न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर होगी।

3. केशवानंद भारती बहस (1973) में, कुछ मूल अधिकारों पर दोनों निर्देशक तत्वों को वरीयता दी गई थी। हालांकि, निर्णय दिया गया था कि न्यायिक समीक्षा को प्रतिबंधित करना असंवैधानिक है और मूल संरचना का उल्लंघन है।

- **निदेशक तत्वों को वरीयता:** 1976 में 42वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के तहत, संसद द्वारा अनुच्छेद 31C में संशोधन कर अनुच्छेद 14, 19 और 31 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों पर संविधान के भाग IV में निहित सभी निदेशक तत्वों को वरीयता प्रदान कर दी गयी।
- **निदेशक तत्वों और मौलिक अधिकारों के बीच संतुलित संबंध:** मिनर्वा मिल्स वाद (1980) में, उच्चतम न्यायालय ने सभी निदेशक तत्वों को सर्वोच्चता प्रदान किए जाने को असंवैधानिक और अवैध घोषित कर दिया तथा अनुच्छेद 31C को पुनः उसके मूल रूप में स्थापित कर दिया गया। यह निर्णय लिया गया कि भाग III और भाग IV के बीच संतुलन भारतीय संविधान का एक अभिन्न अंग है, क्योंकि वे सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रतिबद्धता की एक प्रमुख भावना का सह-निर्माण करते हैं।

इस प्रकार, वर्तमान समय में, मौलिक सिद्धांतों को निर्देशक सिद्धांतों की तुलना में अधिक महत्व दिया गया है, लेकिन साथ ही संसद निर्देश सिद्धांतों को लागू करने के लिए मौलिक अधिकारों को बदल सकती है।

3. Despite executing one of the major functions of democracy, the Election Commission lacks significant powers. Do you agree Explain with appropriate illustrations? लोकतंत्र के प्रमुख कार्यों में से एक को निष्पादित करने के बावजूद चुनाव आयोग के पास महत्वपूर्ण शक्तियों की कमी है। क्या आप सहमत हैं? उपयुक्त दृष्टांतों के साथ समझाइए।

भारत का चुनाव आयोग भारत में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए स्थापित एक स्थायी, स्वतंत्र और संवैधानिक निकाय है। संविधान के अनुच्छेद-324 में, निर्वाचन आयोग में , संसद, राज्य विधायिकाओं, भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की शक्ति निहित है।

चुनाव आयोग के कार्य:

भारत का चुनाव आयोग भारत में लोकतंत्र की चार स्तंभ में से एक है, और इस तरह इसे कई प्रकार के कार्यों के लिए प्राधिकृत किया गया है।

1. यह राजनीतिक दलों को चुनाव के उद्देश्य के लिए पंजीकृत करता है और उन्हें उनके प्रदर्शन के आधार पर राष्ट्रीय या राज्य दलों का दर्जा प्रदान करता है।
2. यह राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करता है और उन्हें चुनाव चिन्ह आवंटित करता है।
3. राजनीतिक दलों को मान्यता देने और उन्हें चुनाव चिन्ह आवंटित करने से संबंधित विवादों के निपटारे के लिए अदालत के रूप में कार्य करना।
4. चुनावी व्यवस्था से संबंधित विवादों में जाँच के लिए अधिकारियों की नियुक्ति करना।
5. चुनाव के समय पार्टियों और उम्मीदवारों द्वारा पालन किये जाने वाले आचार संहिता का निर्धारण करना।
6. धांधली, बूथ कैप्चरिंग, हिंसा, और अन्य अनियमितताओं की स्थिति में चुनाव रद्द करना

चुनाव आयोग के नवीनतम घटनाक्रम:

भले ही संसद का संविधान और अधिनियम चुनाव आयोग को दिन-प्रतिदिन के कामकाज के दौरान व्यापक अधिकार प्रदान करते हैं, लेकिन यह इन शक्तियों और कार्यों के उपयोग के संबंध में कई चुनौतियों का सामना करता है।इसी कारण सर्वोच्च नायालय ने निर्वाचन आयोग को दंतहीन की संज्ञा दी है।

- 2019 के दौरान यह सत्ताधारी पार्टी के सदस्यों द्वारा आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन से जुड़ी घटनाओं पर कार्रवाई नहीं करने के लिए संदेह के घेरे में आ गया है।
- VVPAT से संबंधित मुद्दे, बिना लाइसेंस के NAMO टीवी का प्रसारण, EVM के बारे में चिंताएं, सभी ने संस्था के विश्वससनीयता और गैर-पक्षपात प्रकृति के सामने कई प्रश्न चिन्ह लगा दिए हैं।
- भुगतान आधारित और नकली समाचारों के प्रसार को रोकने के लिए देर से और अपर्याप्त कार्रवाई के लिए ECI की भी आलोचना की जा रही है।
- 2019 के आम चुनाव के दौरान, प्रमुख सेवानिवृत्त नौकरशाहों के एक समूह ने राष्ट्रपति को एक पत्र लिखा जिसमें शीर्ष अधिकारियों के स्थानांतरण, राजस्थान के राज्यपाल द्वारा टिप्पणी, वोटों के लिए सेना को शामिल करने, आदि मुद्दों पर प्रकाश डाला तथा निर्वाचन आयोग पर टिपण्णी करते हुए कहा कि "ECI इच्छाहीन आचरण और विश्वसनीयता के संकट से पीड़ित है।"

2019 के लोकसभा चुनाओं के समय नफरती भाषण देने पर प्रमुख राजनेताओ पर भी चुनाव प्रचार को 72 घंटे तक निलंबित करना, वेल्लोर में मतदान के दौरान धन बल के प्रयोग के कारण चुनाव रद्द करना, सोशल मीडिया और अन्य जागरूकता अभियाओं के कारण अधिक मतदाताओं को सम्मिलित करना, तथा VVPAT के माध्यम से EVM की विश्वससनीयता को मजबूती देना भी ECI के प्रमुख उपलब्धियों में से हैं. हालांकि, इस तथ्य से कोई इनकार नहीं है कि हाल की घटना ने कुछ हद तक विश्वसनीयता को प्रभावित किया है और सुधारों की तत्काल आवश्यकता है-

- 225 वें विधि आयोग की सिफारिशों का पालन करना और प्रधानमंत्री , नेता प्रतिपक्ष और सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से मिलकर बने एक कॉलेजियम प्रणाली के माध्यम से सभी नियुक्तियां करना।
- तीनों चुनाव आयुक्तों के लिए समान संवैधानिक सुरक्षा।
- ECI के खर्चों को भारत की संचित निधि पर भारित करना
- निर्वाचन आयोग को जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत राजनितिक दलों के पंजीकरण रद्द करने की सकती मिलनी चाहिए।

4. "The Panchayati Raj Institute (PRI) is simultaneously a notable success and failure", at present many challenges have hampered it, today it is necessary to adopt such measures which can be helpful in fulfilling the objectives of Panchayati Raj. Make a comment. "पंचायती राज संस्थान (PRI) एक साथ, एक उल्लेखनीय सफलता और विफलता है", वर्तमान में कई चुनौतियों ने इसे बाधित किया है, आज ऐसे उपायों को अपनाना आवश्यक है जो पंचायती राज के उद्देश्यों को पूरा करने में मददगार साबित हो । टिप्पणी करें।

भारत में, पंचायती राज प्रणाली की पहचान विकेंद्रीकरण के प्रमुख साधन के रूप में की जाती है, जिसके माध्यम से लोकतंत्र वास्तव में प्रतिनिधिक और उत्तरदायी बनता है। पंचायती राज संस्थानों को स्थानीय स्व-सरकार के रूप में माना जाता है, जो बुनियादी ढांचागत सुविधाएं प्रदान करने, समाज के कमजोर वर्गों को सशक्त बनाने और ग्रामीण भारत के जमीनी स्तर पर विकास प्रक्रिया शुरू करने के लिए है, जहाँ भारत की आत्मा रहती है।

- स्वतंत्रता के पश्चात् पंचायती राज की स्थापना लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की अवधारणा को साकार करने के लिये उठाए गए महत्त्वपूर्ण कदमों में से एक थी। वर्ष 1993 में संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता मिली थी।

- इसका उद्देश्य देश की करीब ढाई लाख पंचायतों को अधिक अधिकार प्रदान कर उन्हें सशक्त बनाना था और यह उम्मीद थी कि ग्राम पंचायतें स्थानीय ज़रुरतों के अनुसार योजनाएँ बनाएंगी और उन्हें लागू करेंगी। किंतु अपने उद्देश्यों की प्रप्ति में ये संस्थायें अपेक्षा अनुसार सफल नहीं हो सकी।

पंचायती राज की सफलता में चुनौतियाँ-

- पंचायतों के पास राजस्व का कोई मज़बूत आधार नहीं है उन्हें वित्त के लिये राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता है। ज्ञातव्य है कि राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराया गया वित्त किसी विशेष मद में खर्च करने के लिये ही होता है।
- राज्यों में पंचायतों का निर्वाचन नियत समय पर नहीं हो पाता है।
- पंचायतों में जहाँ महिला प्रमुख हैं वहाँ कार्य उनके किसी पुरुष रिश्तेदार के आदेश पर होता है, महिलाएँ केवल नाममात्र की प्रमुख होती हैं। इससे पंचायतों में महिला आरक्षण का उद्देश्य नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।
- क्षेत्रीय राजनीतिक संगठन पंचायतों के मामलों में हस्तक्षेप करते हैं जिससे उनके कार्य एवं निर्णय प्रभावित होते हैं।
- इस व्यवस्था में कई बार पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों एवं राज्य द्वारा नियुक्त पदाधिकारियों के बीच सामंजस्य बनाना मुश्किल होता है, जिससे पंचायतों का विकास प्रभावित होता है।

पंचायती राज व्यवस्था को सशक्त करने के उपाय-

- पंचायती राज संस्थाओं को कर संग्रहण के कुछ व्यापक अधिकार दिये जाने चाहिये। पंचायती राज संस्थाएँ स्वयं अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि करें। इसके अलावा 14वें वित्त आयोग ने पंचायतों के वित्त आवंटन में बढ़ोतरी की है। इस दिशा में और भी बेहतर कदम बढ़ाए जाने की ज़रुरत है।
- पंचायती राज संस्थाओं को और अधिक कार्यपालिकीय अधिकार दिये जाएँ और बजट आवंटन के साथ ही समय-समय पर विश्वसनीय लेखा परीक्षण भी कराया जाना चाहिये। इस दिशा में सरकार द्वारा ई-ग्राम स्वराज पोर्टल का शुभारंभ एक सराहनीय प्रयास है।
- महिलाओं को मानसिक एवं सामाजिक रूप से अधिक-से-अधिक सशक्त बनाना चाहिये जिससे निर्णय लेने के मामलों में आत्मनिर्भर बन सके।
- पंचायतों का निर्वाचन नियत समय पर राज्य निर्वाचन आयोग के मानदंडों पर क्षेत्रीय संगठनों के हस्तक्षेप के बिना होना चाहिये।
- पंचायतों का उनके प्रदर्शन के आधार पर रैंकिंग का आवंटन करना चाहिये तथा इस रैंकिंग में शीर्ष स्थान पाने वाली पंचायत को पुरुस्कृत करना चाहिये।

पंचायतों को कौन-कौन सी शक्तियां प्राप्त होगी और वे किन जिम्मेदारियों का निर्वहन करेंगी, इसका उल्लेख संविधान में 11वीं अनुसूची में किया गया है। ग्राम पंचायत में 6 समितियों का उल्लेख है- जैसे, नियोजन एवं विकास समिति, निर्माण कार्य समिति, शिक्षा समिति, प्रशासनिक समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति तथा जल प्रबंधन समिति। क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत में भी इसी प्रकार की समितियों की व्यवस्था का उल्लेख है। पंचायतीराज व्यवस्था के लागू हो जाने से विकास की अपार संभावनाओं को बल मिला है। गांव के लोगों में जागरूकता बढ़ी है। लोग अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग हुए हैं। साथ ही लालफीताशाही जिसकी वजह से कार्यों में अड़चन देखने को मिलता था, उस पर विराम लग गया है। पंचायतीराज व्यवस्था ने विकास का विकेंद्रीकरण करके उसका लाभ आम जनता तक पहुंचाने में अहम भूमिका का निर्वहन किया है। आज ग्रामीण जीवन की सकारात्मक प्रगति से साफ है कि जिस उद्देश्य से पंचायतीराज व्यवस्था का ताना-बाना बुना गया था, वह अपने लक्ष्य को आसानी से साध रहा है। प्रत्येक पंचायत एक छोटा गणराज्य होता है, जिसकी शक्ति का स्रोत पंचायतीराज व्यवस्था है। भारतीय लोकतंत्र की सफलता भी इसी गणराज्य में निहित है।

5. The speaker plays an important role in advancing democracy by creating a balance between good government and maximum personal freedom. Comment with reference to India./ स्पीकर, अच्छी सरकार और अधिकतम व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाकर लोकतंत्र को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के सन्दर्भ में टिप्पणी करें।

भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि, "एक संसदीय लोकतंत्र में, अध्यक्ष सदन की गरिमा और स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता है और क्योंकि सदन देश का प्रतिनिधित्व करता है, यह एक तरह से स्वतंत्रता और स्वतंत्रता का प्रतीक बन जाता है। देश"।

- लोकसभा या राज्य विधानसभा के अध्यक्ष का चुनाव संबंधित सदन के सदस्यों द्वारा अपने में से किया जाता है। अध्यक्ष पूरे सदन, उसके सदस्यों और उसकी समितियों की शक्तियों और विशेषाधिकारों का संरक्षक होता है।
- इसके माध्यम से सदन की कार्यवाही के संचालन और नियमन के लिए घर में अनुशासन और मर्यादा बनाए रखने का कार्य किया जाता है.
- सदन की निष्पक्षता बनाए रखने के लिए अध्यक्ष द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए संसद, विशेषकर विपक्ष को पर्याप्त समय दिया जाए।
- सदन को स्थगित करता है, और गणपूर्ति के अभाव में सदन की बैठक स्थगित कर देता है।
- यह तय करता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं और इस पर उसका निर्णय अंतिम होता है।
- दलबदल के आधार पर उत्पन्न होने वाले सदस्य की अयोग्यता के प्रश्न पर निर्णय करता है। (हालांकि, किहोतो होलोहन मामले (1992) के बाद से अध्यक्ष द्वारा ऐसा निर्णय न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर नहीं है}।
- वह लोकसभा की सभी संसदीय समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति और कामकाज का पर्यवेक्षण करता है। वह स्वयं कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति और लोकसभा की सामान्य प्रायोजन समिति के अध्यक्ष हैं।

संवैधानिक प्रावधान: अच्छी सरकार: भारत के संविधान के अनुच्छेद 93 में लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की नियुक्ति का प्रावधान है, जबकि संविधान के अनुच्छेद 178 में विधानसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की नियुक्ति का प्रावधान है।

- संविधान के अनुच्छेद 94 में लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के रिक्त होने, इस्तीफा देने या पद से हटाए जाने का प्रावधान है। वहीं, संविधान के अनुच्छेद 179 में विधानसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की रिक्ति, इस्तीफे या हटाने से संबंधित प्रावधान किए गए हैं।
- अनुच्छेद 95 लोकसभा अध्यक्ष के कार्यों या कर्तव्यों का पालन करने के लिए उपाध्यक्ष या किसी अन्य व्यक्ति की शक्तियों को बताता है। वहीं, अनुच्छेद 180 के तहत विधानसभा के अध्यक्ष के रूप में कार्य करने या अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए उपाध्यक्ष या किसी अन्य व्यक्ति की शक्तियों का उल्लेख किया गया है।
- संविधान के अनुच्छेद 96 (लोकसभा से संबंधित) और अनुच्छेद 181 (विधान सभा से संबंधित) के अनुसार, यदि सदन के अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन है, तो वह सदन की अध्यक्षता नहीं कर सकता।
- संविधान के अनुच्छेद 97 में लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते और विधानसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के अनुच्छेद 186 का प्रावधान है।

हालाँकि हाल के दिनों में, लोकसभा अध्यक्ष के कार्यालय की निष्पक्ष और प्रभावी नहीं होने के लिए आलोचना की गई है (जैसा कि एक अच्छी सरकार होने की कल्पना की गई थी):

- उत्तराखंड विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा दलबदल के एक मामले पर निर्णय करना, और वह भी उस समय जब अध्यक्ष को हटाने के लिए प्रस्ताव का नोटिस लंबित था। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़ा और यह निर्देश दिया गया कि लोकसभा अध्यक्ष को ऐसे मामलों में निर्णय लेने से बचना चाहिए।
- सुप्रीम कोर्ट ने आधार विधेयक, 2016 को धन विधेयक के रूप में स्वीकृत करने के लोकसभा अध्यक्ष के फैसले को चुनौती देने वाली याचिका को अनुमति दे दी है। यह तर्क दिया जाता है कि एक विधेयक के मामलों पर एक सार्थक बहस और आम सहमति बनाने के लिए राज्य सभा को भी निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किया जाना चाहिए, जिसमें गोपनीयता, डेटा सुरक्षा, आदि जैसे मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है।
- संसदीय गतिरोध एक आम बात हो गई है, जबकि अध्यक्ष संसदीय कार्यवाही को सुचारू रूप से संचालित करने में असमर्थ प्रतीत होते हैं और पक्षपात के आरोप आम हो गए हैं।

हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा राष्ट्रपति पद की परिकल्पना ईमानदारी और निष्पक्ष रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए की गई थी, लेकिन इसके कार्यालय को राजनीतिक हितों और सत्तारूढ़ दल की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्तरोत्तर बदल दिया गया है। न्यायिक समीक्षा का उपयोग असाधारण परिस्थितियों में भी किया जाता है। इस संदर्भ में एक स्थायी संस्थागत समाधान की आवश्यकता है। धन विधेयकों के मामले में अध्यक्ष की सहायता के लिए दो वरिष्ठ विधायकों की एक समिति नियुक्त करने के ब्रिटिश मॉडल पर विचार करने की आवश्यकता है। ब्रिटेन में एक संसदीय परंपरा विकसित हुई है, जहां एक सांसद जो अध्यक्ष के रूप में चुना जाता है, संबंधित पार्टी से इस्तीफा दे देता है। यह उनकी निष्पक्षता को विश्वसनीयता प्रदान करता है।

6. What do you understand by the word "justice" mentioned in the Preamble of the Indian Constitution? Present the details of the steps taken along with the given constitutional bylaws. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में वर्णित शब्द "न्याय" से आप क्या समझते हैं? प्रदत्त संवैधानिक उपयों के साथ उठाये गए क़दमों का विवरण प्रस्तुत करें।

एक तरफ अनुच्छेद 38-का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देना है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जैसे न्याय राष्ट्र के सभी संस्थानों को सूचित करेंगे जैसा कि प्रस्तावना में निहित है। दूसरी ओर अनुच्छेद ए का उद्देश्य है कि 39 कानूनी प्रणाली का संचालन न्याय को बढ़ावा देगा, समान अवसर के आधार पर, और विशेष रूप से, उपयुक्त कानून या योजनाओं या किसी अन्य तरीके से, मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करेगा, तथा यह सुनिश्चित करना कि आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण किसी भी नागरिक को न्याय दिलाने के अवसरों से इनकार नहीं किया जाता है इसके अलावा, अनुच्छेद से जोड़ना एक सक्षम प्रा 142 को अनुच्छेद 38वधान के रूप में कार्य करता है, जो सर्वोच्च न्यायालय को किसी भी कारण या मामले में पूर्ण न्याय करने के उद्देश्य से कोई आदेश या डिक्री पारित करने का अधिकार देता है। हालाँकि, इन प्रावधानों के अनुसार यह स्पष्ट नहीं है कि न्याय का क्या अर्थ है।

संविधान में वर्णित न्याय के विभिन्न रूप:

- सामाजिक न्याय का अर्थ है कि, समाज के सभी नागरिकों के साथ जाति, रंग, पंथ, नस्ल, धर्म, लिंग आदि के आधार पर बिना किसी भेदभाव के समान व्यवहार किया जाना चाहिए। यह समान सामाजिक स्थिति के आधार पर अधिक न्यायसंगत समाज बनाने का प्रयास करता है।
- आर्थिक न्याय राष्ट्रीय धन और धन के गुणन और उनके समान वितरण द्वारा गरीबी उन्मूलन की परिकल्पना करता है। यह आर्थिक लोकतंत्र स्थापित करने और 'कल्याणकारी राज्य' बनाने की कोशिश करता है।

- राजनीतिक न्याय की मांग है कि समाज देश के शासन की प्रक्रिया में भागीदारी/के संदर्भ में सभी नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों।

संवैधानिक प्रावधान: मूल अधिकार:

1. अनुच्छेद 14,15, 16, 17, के अंतर्गत समानता का अधिकार। 18
2. अनुच्छेद वर्ष से कम आयु के किसी बच्चे को किसी कारखाने व खानों में कार्य करने हेतुनियोजि 14 के अंतर्गत 24त नहीं किया जायेगा।

राज्य की नीति के निदेशक तत्व:

इसमें निशुल्क कानूनी सहायता:, काम करने का अधिकार और बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी और विकलांगता के मामले में सार्वजनिक सहायता सहित लोगों के कल्याण के प्रावधान क्रमशः अनुच्छेद 39ए और 41 के तहत शामिल हैं।

विधिक कदम:

1. अनुसूचित जाति व जनजाति अधिनियम (अत्याचार निवारण), 1989
2. विकलांग व्यक्तियों का अधिकार अधिनियम, 2016
3. वन अधिकार अधिनियम, 2006.

आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने हेतु अवसर, आय एवं वेतन में असमानताओं को दूर करने के लिए कदम उठाए गए हैं, जैसे:

संवैधानिक प्रावधान:

मौलिक अधिकार: हाल ही में जोड़े गए अनुच्छेद 15 (6) और 16 (6) के तहत, राज्य नागरिकों के किसी भी आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है।

नीति के निर्देशक सिद्धांत: विभिन्न अनुच्छेदों 39, के तहत आजीविका के पर्याप 43 और 42 ्त साधनों का अधिकार, संपत्ति की एकाग्रता पर प्रतिबंध; समान काम के लिए समान वेतन, काम की उचित और मानवीय परिस्थितियों का प्रावधान और सुरक्षित जीवनयापन वेतन प्राप्त करना।

विधिक कदम:

1 प्रत्येक वर्ष विधायिका द्वारा पारित बजट के माध्यम से क्रमिक कराधान।

2 महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005

राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए, राजनीतिक क्षेत्र में लोगों के बीच किसी भी विवेकाधीन मतभेदों को पाटने के लिए कदम उठाए गए हैं, जैसे:

संवैधानिक प्रावधान:

1 अनुच्छेद :326संघ और राज्य विधानसभाओं के चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे।

2 अनुच्छेद 243डी, 243टी, के तहत पंचायतों 332 और 330, नगर पालिकाओं, लोकसभा और राज्य विधानसभा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण प्रदान किया गया है।

विधिक कदम:

1 नियमित चुनाव कराने के लिए जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और 1950

2 योग्य उम्मीदवारों को मुफ्त कानूनी सेवाएं प्रदान करने के लिए कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987

संविधान में क्रमशः अनुच्छेद के तहत मौलिक और कानूनी अधिकारों के प्रवर्तन का भी प्रावधान है। ये 226 और 32 प्रावधान समाज के सभी वर्गों के हित ों को समायोजित करने और सभी के लिए न्याय सुनिश्चित करने के मामले में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो हमारे संविधान निर्माताओं का सपना था।

7. The lack of robust investigative procedures undermines the image of Parliament as the highest legislative institutions and encourages judicial encroachment on its powers." What will be the consequences of ignoring the parliamentary standing committees set up to solve similar problems? "मजबूत जांच प्रक्रियाओं का अभाव उच्चतम विधायी संस्थानों के रूप में संसद की छवि को कमजोर करता है और इसकी शक्तियों पर न्यायिक अतिक्रमण को प्रोत्साहित करता है।" ऐसी ही समस्याओं के समाधान के लिए बनी संसदीय स्थायी समितियों की अनदेखी के क्या परिणाम होंगे ?

संसद की प्राथमिक भूमिका विचारविमर्श-, चर्चा और किसी भी लोकतांत्रिक संस्था की पहचान पर पुनर्विचार है। हालाँकि संसद उन मामलों पर विचारविमर्श करती है जो जटिल हैं और इसलिये ऐसे मामलों को बेहतर तरीके से समझने के लिये तकनीकी - विशेषज्ञता की आवश्यकता हैं

। इस प्रकार संसदीय समितियाँ एक मंच प्रदान करके इस की सहायता करती हैं जहाँ सदस्य अपने अध्ययन के दौरान डोमेन विशेषज्ञों और सरकारी अधिकारियों के साथ संलग्न हो सकते हैं। संसदीय लोकतंत्र की बेहतरी के लिये उन्हें दरकिनार करने के बजाय संसदीय समितियों को मज़बूत करने की आवश्यकता है।

- आधुनिक युग में संसद को न केवल विभिन्न और जटिल प्रकार का, बल्कि मात्रा में भी अत्यधिक कार्य करना पड़ता है। संसद के पास इस कार्य को निपटाने के लिए सीमित समय होता है। इसलिए संसद उन सभी विधायी तथा अन्य मामलों पर, जो उसके समक्ष आते हैं, गहराई के साथ विचार नहीं कर सकती। अतसंसद का बहुत सा काम सभा की समितियों द्वारा निपटाया जाता है, जिन्हें संसदीय समितियां कहते हैं। संसदीय समिति से तात्पर्य उस समिति से है, जो सभा द्वारा नियुक्त या निर्वाचित की जाती है अथवा अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित की जाती है और अध्यक्ष के - निदेशानुसार कार्य करती है तथा अपना प्रतिवेदन सभा को या अध्यक्ष को प्रस्तुत करती है और समिति का सचिवालय लोक सभा सचिवालय द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।
- संसदीय स्थायी समितियां प्रकृति में स्थायी होती हैं, और इन्हें सदन द्वारा नियुक्त या निर्वाचित किया जाता है या लोकसभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति द्वारा नामित किया जाता है। वे अपनी रिपोर्ट सदनों (अपनी रिपोर्ट) के समक्ष पेश करते हैं। जिसके फलस्वरूप संसद की विभिन्न गतिविधियों से संबंधित कार्यों में सहायता मिलती है। लोक लेखा समिति - कुछ स्थायी समितियाँ हैं, प्राक्कलन समिति, सरकारी उपक्रमों की समिति, विभागीय रूप से संबंधित स्थायी समितियाँ आदि।
- इन समितियों के महत्व के बावजूद, %25 16वीं लोकसभा में पेश किए गए विधेयकों में से केवलही समितियों को संदर्भित किए गए थे, जबकि %71और %60विधेयक क्रमशः 14वीं लोकसभा में उनके पास भेजे 15वीं और गए थे। विधेयकों को पारित किया गया और किसी भी विधेयक की संसदीय समिति द्वारा 14 17वीं लोकसभा के पहले सत्र में 2019-विश्लेषित नहीं किया गया। आरटीआई संशोधन विधेयक/जांच, यूएपीए विधेयक 2019-आदि जैसे महत्वपूर्ण विधेयक स्थायी समितियों द्वारा बिना जांच और आलोचनात्मक विश्लेषण के पारित किए गए।

संसदीय समितियों द्वारा संवीक्षा के बिना विधेयकों को पारित कराने के कारण पड़ने वाला प्रभाव:

- यह संसद की सरकारी नीतियों की संवीक्षा करने की क्षमता को प्रतिबंधित करता है और सुविचारित चर्चा के अभाव में सरकार को अपेक्षाकृत कम जबाबदेह बनाता है।
- स्थायी समितियों की जांच के बिना पारित विधेयकों में सत्यनिष्ठा और दूरदर्शिता की कमी हो सकती है। इस तरह के अधिनियमों को बारबार संशोधित करने की आवश्यकता हो सकती है-, जिससे प्रक्रिया में अनावश्यक देरी हो सकती है और इस तरह मूल उद्देश्य विफल हो सकता है।

- यह विपक्ष की भूमिका को कमजोर करता है ।(जिसके सदस्य संसदीय समितियों का हिस्सा हैं)
- यह विधायिका की जांच से बचने के लिए अन्य तरीकों, जैसे गिलोटिन, बारबार अध्यादेशों की घोषणा आदि के - उपयोग को प्रोत्साहित करता है।
- यह संबंधित हितधारकों के साथ जुड़ाव को कम करता है, क्योंकि समितियां एक ओर संसद और लोगों के बीच एक जोड़ने वाली कड़ी के रूप में कार्य करती हैं, और दूसरी ओर प्रशासन और संसद।
- यह वित्तीय विवेक में बाधा डालता है। समितियां सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता और दक्षता सुनिश्चित करती हैं, क्योंकि मंत्रालयोंविभागों/ द्वारा अपनी मांगों को तैयार करते समय अधिक ध्यान दिया जाता है।

यह स्थिति गलत दृष्टान्त स्थापित करती है क्योंकि यह कार्यपालिका पर विधायिका के नियंत्रण के संवैधानिक अधिदेश के विरुद्ध है। अतः सभी विधेयकों को समितियों को संदर्भित करने, इसके सदस्यों के कार्यकाल की अवधि में अपेक्षाकृत वृद्धि करने और पर्याप्त अनुसंधान सहायता के साथ समितियों को सुदृढ़ बनाने हेतु राष्ट्रीय संविधान कार्यकरण समीक्षा आयोग,) 2002National Commission to Review the Working of the Constitution, (2002की अनुशंसाओं का अंगीकरण एक अनिवार्यता है।

8. Describe the process of delimitation in India. In the present time, please also highlight issues related to the delimitation process. भारत में परिसीमन की प्रक्रिया का वर्णन करें। मौजूदा समय में परिसीमन प्रक्रिया जुड़े मुद्दों पर भी प्रकश डालिये।

परिसीमन एक विधायी निकाय वाले देश या प्रांत में क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं या परिसीमन को निर्धारित करने का कार्य या प्रक्रिया है। परिसीमन का कार्य एक उच्च शक्ति निकाय को सौंपा जाता है जिसे परिसीमन आयोग कहा जाता है। भारत में चार ऐसे परिसीमन आयोगों का गठन किया गया है, अर्थात 1952, 1963, 1973 और नवीनतम 2002 में। आयोग के आदेशों को कानून की शक्ति है और किसी भी अदालत के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 82 के तहत, संसद प्रत्येक जनगणना के बाद एक परिसीमन अधिनियम पारित करती है। अधिनियम के लागू होने के बाद, केंद्र सरकार एक परिसीमन आयोग का गठन करती है। यह परिसीमन प्रत्येक राज्य को आवंटित सीटों की संख्या और उस राज्य की जनसंख्या के अनुपात में समानता के सिद्धांत पर आधारित है। संविधान के अनुच्छेद 81 के तहत व्यक्त की गई जनसंख्या शब्द को पिछली पिछली जनगणना के दौरान प्राप्त प्रासंगिक डेटा के रूप में परिभाषित किया गया है जो प्रकाशित किया गया है।

कार्यान्वयन

- परिसीमन आयोग के मसौदा प्रस्तावों को सार्वजनिक प्रतिक्रिया के लिये भारत के राजपत्र, संबंधित राज्यों के आधिकारिक राजपत्रों और कम से कम दो राष्ट्रीय समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जाता है।
- आयोग द्वारा सार्वजनिक बैठकों का आयोजन भी किया जाता है।
- जनता की बात सुनने के बाद यह बैठकों के दौरान लिखित या मौखिक रूप से प्राप्त आपत्तियों और सुझावों पर विचार करता है और यदि आवश्यक समझता है तो मसौदा प्रस्ताव में इस बाबत परिवर्तन करता है।
- अंतिम आदेश भारत के राजपत्र और राज्य के राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है तथा राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट तिथि से लागू होता है।

भारत के चुनाव आयोग ने इस तथ्य की ओर इशारा किया कि पहले के परिसीमन ने कई राजनीतिक दलों और व्यक्तियों को असंतुष्ट किया, और सरकार को सलाह दी कि भविष्य के सभी परिसीमन एक स्वतंत्र आयोग द्वारा किए जाने चाहिए। परिसीमन अधिनियम वर्ष 1952 में अधिनियमित किया गया था। 1952, 1962, 1972 और 2002 के अधिनियमों के तहत वर्ष 1952,

1963, 1973 और 2002 में चार बार परिसीमन आयोगों का गठन किया गया था। 1981 और 1991 की जनगणना के बाद, कोई परिसीमन नहीं किया गया था।

वर्तमान परिसीमन प्रक्रिया से सम्बंधित विवाद, जैसे :

1. इस प्रक्रिया के लिए जनसंख्या ही प्राथमिक मानदंड है: जनसंख्या नियंत्रण में अग्रणी राज्यों को विधायिका में अपनी सीटों की कमी का सामना करना पड़ा है। इसके विपरीत वे राज्य जिनकी जनसंख्या अधिक है, उनकी सीटों की संख्या भी अधिक है और इस प्रकार वे भारत की राजनीति को नियंत्रित कर रहे हैं तथा आगे भी करते रहेंगे, किन्तु इसके फलस्वरूप वे राज्य हतोत्साहित हो रहे हैं जिन्होंने जनसंख्या नियंत्रण में प्रगति की है।
2. शासन पर प्रभाव: राजनीतिक भारांश कम होने के कारण, पूर्वोत्तर के राज्य जिनकी जनसंख्या कम है, नीतियां यायोजनाएं बनाने के समय कथित रूप से उनपर कम ध्यान दिया जाता है। नीतियों को यू.पी, बिहार जैसे अधिक जनसंख्या वाले राज्यों पर लक्षित किया जाता है।
3. प्रतिनिधित्व संबंधी निहितार्थ: बहुत अधिक सम्भावना है कि अगला परिसीमन 2031 की जनगणना के आधार पर होगा, जिससे संसद में सीटों की संख्या में वृद्धि होगी। उस समय सदन की गरिमा बनाए रखना कठिन हो जाएगा क्योंकि वर्तमान सदस्यों की संख्या के कारण ही काफी अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है। सदस्यों की संख्या में अनायास वृद्धि से सदन के अध्यक्षका कार्य और कठिन एवं दुष्कर हो जाएगा।

बढ़ती जनसंख्या के साथ, जनप्रतिनिधियों के लिए अपने निर्वाचन क्षेत्रों में जनता के हर मुद्दे को संबोधित करना मुश्किल हो जाएगा, और इस तरह जनता में शिकायत की भावना पैदा होगी जो लोकतंत्र की भावना को कमजोर करेगी।

उपरोक्त चिन्हित मुद्दों को ध्यान में रखते हुए, अगला परिसीमन अभ्यास शुरू करने से पहले व्यापक परामर्श की आवश्यकता है। पिछले दशकों में चुनावी सुधारों के प्रस्तावों में भी, विभिन्न आयोगों ने इन मुद्दों को उचित रूप से संबोधित करने की सिफारिश की है। निकट भविष्य में हमारे राजनेताओं को इन चुनौतियों से निपटना होगा।

9. Pluralistic democracy is India's biggest strength, but its mode of operation is the source of our major weaknesses. In the context of the Indian parliamentary system, give your opinion on the said statement and also explain how the presidential system can be an alternative.

बहुलतावादी लोकतंत्र भारत की सबसे बड़ी ताकत है, लेकिन इसके संचालन का तरीका हमारी प्रमुख कमजोरियों का स्रोत है। भारतीय संसदीय प्रणाली के संदर्भ में उक्त कथन पर अपनी राय दें तथा, यह भी समझायें कि राष्ट्रपति-प्रणाली किस प्रकार विकल्प बन सकती है ?

भारत को 1919 और 1935 के अधिनियमों के तहत संसदीय प्रणाली के संचालन का पहले से ही अनुभव था। इस अनुभव से पता चला कि संसदीय प्रणाली में, लोगों के प्रतिनिधियों के माध्यम से कार्यपालिका को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। इसलिए जवाबदेही को राष्ट्रपति प्रणाली की स्थिरता से अधिक महत्व दिया गया। इस प्रणाली को हमारे समाज की बहुलवादी प्रकृति के कारण अपनाया गया है, जिसमें बहुसंख्यक आबादी के साथ-साथ राजनीतिक धारा में विविध वर्गों और क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व शामिल है।

एक व्यक्ति में संपूर्ण कार्यकारी शक्ति निहित करने की प्रणाली के विपरीत, यह प्रणाली संस्था निर्माण पर जोर देती है। इसकी समग्रता और समन्वय दो स्तरों पर होता है: जहां सांसद विधायी स्तर पर और साथ ही मंत्रिपरिषद के स्तर पर विभिन्न पृष्ठभूमि के प्रतिनिधि होते हैं। इसके अलावा, एक प्रणाली में मुद्दे-आधारित विपक्ष को अक्सर सत्तारूढ़ दल द्वारा सुना जाता है और उनके विचारों को शासन में शामिल किया जाता है।

भारत में संसदीय प्रणाली की सीमाएं:

आजादी से पहले भारत में भी ऐसी ही संसदीय शासन व्यवस्था लागू की गई थी, जिसे आजादी के बाद भी अपनाया गया था। फिर भी, दोनों देशों की संसदीय प्रणाली में कुछ अंतर देखने को मिलते हैं-

- कम जनसंख्या और विविधता के कारण ब्रिटेन में संसदीय प्रणाली सफल रही। वहीं, ब्रिटेन में राजनीतिक परंपराएं संसदीय लोकतंत्र को एक व्यावहारिक व्यवस्था भी बनाती हैं।
- ब्रिटेन में संसदीय प्रणाली उन परंपराओं पर आधारित है जो भारत में मौजूद नहीं हैं। ब्रिटेन एक द्वीपीय देश है जहां प्रति निर्वाचन क्षेत्र में 1 लाख से कम मतदाता हैं जबकि भारत में प्रति निर्वाचन क्षेत्र में 15 लाख मतदाता हैं।
- ब्रिटेन में राजनीतिक दलों की एक स्पष्ट विचारधारा है, और उनकी नीतियां और प्राथमिकताएं उन्हें एक दूसरे से अलग करती हैं। जबकि भारत में अक्सर किसी राजनीतिक दल का सदस्य अपनी सुविधा के अनुसार अपनी पार्टी और विचारधारा को बदलता रहता है।
- ब्रिटेन में, एक राजनेता के दलबदल पर जनता और राजनीतिक दल दोनों की प्रतिक्रिया नकारात्मक होती है। जबकि भारत में, जीत की उम्मीद राजनीतिक दलों द्वारा दी जाती है और जाति, धर्म को लोगों द्वारा वरीयता दी जाती है।
- ब्रिटेन में, जहां संसद के सदस्यों द्वारा सरकार की जवाबदेही को महत्व दिया जाता है, भारत में विधायिका के सदस्य कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग को अधिक महत्व देते हैं।

भारत में संसदीय प्रणाली की विफलता के कारण:

- भारत में, विधायी शक्ति का प्रयोग कार्यकारी शक्ति के रूप में किया जाता है। चूंकि संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका विधायिका के सदस्यों से बनी होती है, इसलिए कार्यकारी शक्तियों के रूप में विधायी शक्तियों का प्रयोग करने की संभावना और बढ़ जाती है।
- प्रशासन के बजाय राजनीति अधिक महत्व दिया जाना: जब सरकार कम सदस्यों के समर्थन पर टिकी होती है तो ऐसे सरकार की सत्ता खोने का भय रहता है। ऐसे में सत्ताधारी दल को प्रशासन के बजाय राजनीति पर अधिक ध्यान केंद्रित करना पड़ता है।
- भारत में राजनीतिक दल कई गुना बढ़ गए हैं, जबकि उनके पास न तो कोई निश्चित आदर्श है और न ही कार्यप्रणाली। कई दल केवल अपने निहित स्वार्थों पर आधारित हैं। एक गठबंधन सरकार प्रणाली में, ऐसे दल प्रशासनिक निर्णय लेने में बाधा डालते हैं, और बेहतर आत्म-सेवा के अवसर मिलते ही सरकार को अस्थिर कर सकते हैं।
- चूंकि भारत में राजनीतिक दलों के कोई निश्चित आदर्श नहीं हैं, मतदाता मतदान के समय पार्टियों के बजाय व्यक्तियों को वरीयता देते हैं। जिससे लोकलुभावनवाद और अधिनायकवाद के तत्वों को और बल मिल रहा है।
- निर्वाचन क्षेत्रों में उम्मीदवारों का व्यक्तिगत रूप से मूल्यांकन करने के बजाय, लोग उनकी जाति, धर्म या प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री के नाम के आधार पर वोट करते हैं।

राष्ट्रपति-प्रणाली के पक्ष में तर्क :

- यह राजनीतिक दलों को अधिक लोकतांत्रिक और उम्मीदवारों के चयन में जागरूक बनाएगा। उन्हें प्रत्यक्ष चुनाव के लिए अपने सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार का चयन करना होगा।
- मतदाता अपने उम्मीदवारों से भली-भांति परिचित होंगे। इससे उम्मीदवारों की जवाबदेही बढ़ेगी।
- समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी। वह अपने मंत्रिमंडल में श्रेष्ठ और बुद्धिमान व्यक्तियों को आकर्षित करने में सक्षम होगा, चाहे उनकी राजनीतिक संबद्धता कुछ भी हो।

- हमारी लोकतांत्रिक संस्थाएँ परिपक्व और विकसित हुई हैं, और आज जनता अधिक जागरूक है, इसलिए हम एक नई व्यवस्था की ओर बढ़ सकते हैं।

हालांकि, संसदीय-प्रणाली में कई कमियां दिखाई देती हैं, जैसे प्रतिनिधित्व, दक्षता और सांसदों के सदाचार में कमी, भ्रष्टाचार, गठबंधन की राजनीति के कारण अस्थिरता, कमजोर विपक्ष आदि हैं, फिर भी यह कहा जा सकता है कि इस प्रणाली की पूरी जांच और सुधार की आवश्यकता है, न कि एक नए प्रणाली की ओर बढ़ने की।

10. CAG plays an important role in ensuring the financial accountability of the Executive towards Parliament. Explain in detail. Also, to ensure the independence of the CAG, mention the provisions mentioned in the constitution.

संसद के प्रति कार्यपालिका की वित्तीय जवाबदेही सुनिश्चित करने में CAG महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। सविस्तार समझाईये। साथ ही CAG की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने हेतु संविधान में वर्णित प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।

संसदीय लोकतंत्र में, कार्यपालिका विधायिका का हिस्सा होती है, और यह अपने कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। वित्तीय जवाबदेही इस जिम्मेदारी का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसे सुनिश्चित करने के लिए भारत के संविधान में भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) (अनुच्छेद 148) के लिए एक स्वतंत्र कार्यालय का प्रावधान किया गया है।

- भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक (Comptroller & Auditor General of India-CAG) भारत के संविधान के तहत एक स्वतंत्र प्राधिकरण है।
- यह भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) का प्रमुख और सार्वजनिक क्षेत्र का प्रमुख संरक्षक है।
- इस संस्था के माध्यम से संसद और राज्य विधानसभाओं के लिये सरकार और अन्य सार्वजनिक प्राधिकरणों (सार्वजनिक धन खर्च करने वाले) की जवाबदेही सुनिश्चित की जाती है और यह जानकारी जनसाधारण को दी जाती है।

वित्तीय उत्तरदायित्व और CAG

- लोक लेखा समिति संसद की सबसे महत्वपूर्ण स्थायी समितियों में से एक है। समिति का कार्य भारत के नियंत्रक एवंमहालेखा परीक्षक (CAG) के वार्षिक लेखा परीक्षण रिपोर्टों की जांच करना है।
- CAG राष्ट्रपति के समक्ष तीन प्रकार का लेखा परीक्षण/ऑडिट प्रस्तुत करता है- विनियोग खातों पर ऑडिट रिपोर्ट, वित्त खातों पर ऑडिट रिपोर्ट और सार्वजनिक उपक्रमों पर ऑडिट रिपोर्ट।
- लोक लेखा समिति तकनीकी अनियमितताओं को प्रकट करने के लिए सार्वजनिक व्यय की जांच न केवल विधिक एवं औपचारिक दृष्टिकोण से करती है बल्कि अर्थव्यवस्था, विवेक,तर्कसंगतता एवं प्राधिकार की दृष्टि से भी करता है ताकि अपव्यय, हानि, भ्रष्टाचार, अक्षमता और निरर्थक व्ययों के मामलो को सामने लाया जा सके।
- अपने कार्यों की पूर्ति में, समिति CAG द्वारा सहायता प्राप्त करती है। वास्तव में, CAG समिति के लिए एक मार्गदर्शक, मित्र और दार्शनिक के रूप में कार्य करता है।
- CAG की भूमिका भारत के संविधान और वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में संसद के कानून को बनाए रखना है।
- वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में संसद के प्रति कार्यपालिका (अर्थात मंत्रिपरिषद) की जवाबदेही CAG की ऑडिट रिपोर्ट के माध्यम से सुरक्षित है।

कैग की स्वायत्तता:

- CAG की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिये संविधान में कई प्रावधान किये गए हैं।

- CAG राष्ट्रपति की सील और वारंट द्वारा नियुक्त किया जाता है और इसका कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक होता है। (दोनों में से जो भी पहले हो)
- CAG को राष्ट्रपति द्वारा केवल संविधान में दर्ज प्रक्रिया के अनुसार हटाया जा सकता है जो कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के तरीके के समान है।
- एक बार CAG के पद से सेवानिवृत्त होने/इस्तीफा देने के बाद वह भारत सरकार या किसी भी राज्य सरकार के अधीन किसी भी कार्यालय का पदभार नहीं ले सकता।
- CAG का वेतन और अन्य सेवा शर्तें नियुक्ति के बाद भिन्न (कम) नहीं की जा सकतीं।
- उसकी प्रशासनिक शक्तियाँ और भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग में सेवारत अधिकारियों की सेवा शर्तें राष्ट्रपति द्वारा उससे परामर्श के बाद ही निर्धारित की जाती हैं।
- CAG के कार्यालय का प्रशासनिक व्यय, जिसमें सभी वेतन, भत्ते और पेंशन शामिल हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं जिन पर संसद में मतदान नहीं हो सकता।

11. Gandhi's statement "The best way to find yourself is to lose yourself in the service of others", is very accurate in terms of the fundamental duties provided in the Constitution. Do you agree?

गांधी का कथन "अपने आप को खोजने का सबसे अच्छा तरीका है, दूसरों की सेवा में खुद को खो देना", संविधान में प्रदान किए गए मूल कर्तव्यों के संदर्भ में बहुत सटीक है। क्या आप सहमत हैं?

प्रारंभ में संविधान के अंतर्गत नागरिकों के लिये मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था नहीं की गई थी, परंतु समय के साथ समाज में असामाजिक व देश विरोधी तत्त्वों की गतिविधियों में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप ऐसी गतिविधियों के प्रति नागरिकों को जागरूक करने तथा उनमें कर्त्तव्यबोध की भावना का प्रसार करने के लिये वर्ष 1976 में संविधान के भाग-4 क में अनुच्छेद-51 क के अंतर्गत मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था की गई।

मूल कर्त्तव्य से तात्पर्य

- मौलिक कर्तव्य राज्य और नागरिकों के बीच एक सामाजिक अनुबंध है, जिसे किसी देश के संविधान द्वारा वैध किया जाता है।
- अधिकारों के संबंध में यह भी महत्वपूर्ण है कि सभी नागरिक समाज और राज्य के प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन में ईमानदार हों।

संविधान में वर्णित मूल कर्त्तव्य:

1. संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें।
2. स्वतंत्रता के लिये राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोये रखें और उनका पालन करें।
3. भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें तथा उसे अक्षुण्ण रखें।
4. देश की रक्षा करें और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग आधारित सभी प्रकार के भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।
6. हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझें और उसका परिरक्षण करें।
7. प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव आते हैं, की रक्षा करें और संवर्द्धन करें तथा प्राणीमात्र के लिये दया भाव रखें।

8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।
9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करें जिससे राष्ट्र प्रगति की ओर निरंतर बढ़ते हुए उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।
11. 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बीच के अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना। यह कर्त्तव्य 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया।

मौलिक कर्तव्यों का महत्त्व:

- गौरतलब है कि दुनिया भर के कई देशों ने 'जिम्मेदार नागरिकता' के सिद्धांतों को आत्मसात कर स्वयं को विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बदलने का काम किया है।
- इस संबंध में संयुक्त राज्य अमेरिका को सबसे उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है। अमेरिका द्वारा अपने नागरिकों को 'सिटिज़न्स अल्मनाक' (Citizens' Almanac) नाम से एक दस्तावेज़ जारी किया जाता है जिसमें सभी नागरिकों के कर्तव्यों का विवरण दिया होता है।
- एक और उदाहरण सिंगापुर है, जिसकी विकास की कहानी नागरिकों द्वारा कर्तव्यों के प्रदर्शन के साथ शुरू हुई। नतीजतन, सिंगापुर ने कम समय में खुद को एक अविकसित राष्ट्र से एक विकसित राष्ट्र में बदल लिया।
- मौलिक कर्तव्य देश के नागरिकों के लिए एक प्रकार के अलर्ट के रूप में कार्य करते हैं। गौरतलब है कि नागरिकों को अपने देश और अन्य नागरिकों के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होना चाहिए।
- ये असामाजिक गतिविधियों जैसे- झंडा जलाना, सार्वजनिक संपत्ति को नष्ट करना या सार्वजनिक शांति को भंग करना आदि के विरुद्ध लोगों के लिये एक चेतावनी के रूप में कार्य करते हैं।
- ये राष्ट्र के प्रति अनुशासन और प्रतिबद्धता की भावना को बढ़ावा देने के साथ-साथ नागरिकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करके राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करते हैं।

मौलिक कर्तव्यों की प्रासंगिकता:

- मौलिक कर्तव्यों को संविधान में शामिल किए जाने के तीन दशक बाद भी इसके बारे में नागरिकों में पर्याप्त जागरूकता का अभाव है।
- 2016 में दायर एक जनहित याचिका में यह तथ्य सामने आया कि सुप्रीम कोर्ट के वकीलों, न्यायाधीशों और सांसदों सहित देश के लगभग 99.9 प्रतिशत नागरिक संविधान के अनुच्छेद 51 ए में उल्लिखित कर्तव्यों का पालन नहीं करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्हें इसकी जानकारी नहीं है।
- वर्तमान में भारत की प्रगति के लिए मौलिक कर्तव्यों के निर्वहन की आवश्यकता पर बल देना अनिवार्य हो गया है।
- उल्लेखनीय है कि हाल की कई घटनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि हम देश में भाईचारे की भावना को बनाए रखने में असमर्थ रहे हैं।
- यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जब तक नागरिक अपने मौलिक अधिकारों के साथ-साथ मौलिक कर्तव्यों का पालन नहीं करेंगे, हम भारतीय समाज में लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत नहीं कर पाएंगे।

गैर-प्रवर्तनीय होने के बावजूद, मौलिक कर्तव्य की अवधारणा भारत जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्रों के लिए महत्वपूर्ण है। एक लोकतंत्र को तब तक जीवित नहीं कहा जाएगा जब तक कि उसके नागरिक शासन में सक्रिय भाग लेने और देश के सर्वोत्तम हित के लिए जिम्मेदारियां निभाने के लिए तैयार न हों। इसलिए संविधान से मौलिक कर्तव्यों की अवधारणा को हटाना भारत के हित में

बिल्कुल नहीं है, यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न पहलुओं में सुधारों पर चर्चा की जाए और आवश्यक विकल्पों का पता लगाया जाए।

12. What is meant by Contempt of court? To what extent do you agree with the statement that the Contempt of Court Act impedes freedom of speech and expression provided by the Constitution? Confirm your answer with logic.

न्यायिक अवमानना से क्या आशय है? आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं कि न्यायिक अवमानना अधिनियम, संविधान द्वारा प्रदत्त वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करता है। तर्क सहित अपने उत्तर की पुष्टि कीजिये।

अदालती कानून की अवमानना भारतीय कानूनी संदर्भ में सबसे विवादास्पद तत्वों में से एक है। हालांकि, अवमानना कानून की मूल अवधारणा उन लोगों को दंडित करना है जो अदालत के आदेशों का अपमान या अवज्ञा करते हैं। भारतीय संदर्भ में, अवमानना कानून का उपयोग उन लोगों को दंडित करने के लिए किया जाता है जो अदालत की गरिमा को भंग करते हैं, और न्यायिक प्रशासन में बाधा डालते हैं।

न्यायिक अवमानना की अवधारणा

- 'अदालत की अवमानना' की अवधारणा इंग्लैंड में कई सदियों से मौजूद है। इंग्लैंड में इसे राजा की 'न्यायिक शक्तियों' की रक्षा करने के उद्देश्य से एक सामान्य कानूनी सिद्धांतों के रूप में मान्यता प्राप्त है।
- प्रारंभ में राजा स्वयं अपनी न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता था, लेकिन बाद में इन शक्तियों का प्रयोग 'न्यायाधीशों के पैनल' द्वारा किया जाता था जो राजा के नाम पर कार्य करते थे। न्यायाधीशों के आदेशों का उल्लंघन स्वयं राजा के अपमान के रूप में देखा जाता था।
- समय के साथ, न्यायाधीशों की किसी भी तरह की अवज्ञा, या उनके निर्देशों के कार्यान्वयन में बाधा डालना, या कोई भी टिप्पणी या कार्य करना जो उनके प्रति अनादर दिखाता है, दंडनीय बन गया।
- भारत में स्वतंत्रता से पूर्व भी न्यायालय की अवमानना के नियम विद्यमान थे। प्रारंभिक उच्च न्यायालयों के अलावा, कुछ रियासतों की अदालतों में ऐसे कानून मौजूद थे।

न्यायिक अवमानना के लिये दंड का प्रावधान:

- सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को न्यायालय की अवमानना के लिये दंडित करने की शक्ति प्राप्त है। यह दंड छह महीने का साधारण कारावास या 2000 रूपए तक का जुर्माना या दोंनों एक साथ हो सकता है।
- वर्ष 1991 में, सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि, उसे न केवल खुद की बल्कि सम्पूर्ण देश में किसी भी उच्च न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालयों और न्यायाधिकरणों की अवमानना के मामलों में भी दंडित करने की शक्ति है।
- न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 10 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों को अधीनस्थ न्यायालयों की अवमानना के लिए दंड देने का विशेष अधिकार दिया गया है।

न्यायिक अवमानना से संबंधित चिंताएँ:

- संविधान का अनुच्छेद 19 भारत के प्रत्येक नागरिक को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है, लेकिन न्यायिक अवमानना अधिनियम, 1971 द्वारा न्यायालय के कामकाज के खिलाफ बोलना प्रतिबंधित है।
- यह कानून बहुत व्यक्तिपरक है, इसलिए अवमानना की सजा का इस्तेमाल अदालत खुद की आलोचना करने वाले की आवाज को दबाने के लिए कर सकती है।
- अवमानना अधिनियम न्यायपालिका के लिए हितों के टकराव की स्थिति पैदा करता है, क्योंकि न्यायाधीश स्वयं पीड़ित होते हैं और वे स्वयं न्यायपालिका की भूमिका का निर्वहन करते हैं।

- अवमानना अधिनियम लोकतांत्रिक लोकाचार के खिलाफ है, क्योंकि एक स्वस्थ लोकतंत्र में रचनात्मक आलोचना सर्वोपरि है, जबकि कानून न्यायपालिका की आलोचना को प्रतिबंधित करता है।
- न्यायिक अवमानना अधिनियम में व्यक्ति की रक्षापायों के संबंध में प्रावधान का अभाव है, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध है।

एक उपाय के रूप में, अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्राथमिक माना जाना चाहिए, और अदालत की अवमानना की शक्ति को इसके अधीन किया जाना चाहिए। न्यायपालिका को दो परस्पर विरोधी सिद्धांतों, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और निष्पक्ष निर्णय को संतुलित करने की दिशा में प्रयास करना चाहिए। विधायिका के लिए अवमानना कानून में संशोधन के लिए कदम उठाना और अवमानना अधिनियम और इसके लागू होने की सीमाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना आवश्यक है।

13. The Finance Commission, as a constitutional body, performs an important role in balancing fiscal federalism, although its recommendations are not binding in nature. Describe.

प्रश्न: वित्त आयोग एक संवैधानिक निकाय के रूप में राजकोषीय संघवाद को संतुलित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है, तथापि इसकी सिफारिशें बाध्यकारी प्रकृति की नहीं है। वर्णन करें।

वित्त आयोग एक संवैधानिक निकाय है जो संविधान के अनुच्छेद 280 के तहत गठित राजकोषीय संघवाद की धुरी है। इसकी मुख्य जिम्मेदारी संघ और राज्यों की वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन करना, उनके बीच करों के वितरण की सिफारिश करना और राज्यों के बीच इन करों के वितरण के सिद्धांतों को निर्धारित करना है। वित्त आयोग की विशेषता सरकार के सभी स्तरों पर व्यापक और गहन विचार-विमर्श करके सहकारी संघवाद के सिद्धांत को मजबूत करना है। इसकी सिफारिशें सार्वजनिक व्यय की गुणवत्ता में सुधार और राजकोषीय स्थिरता को बढ़ाने की दिशा में भी तैयार की गई हैं। पहला वित्त आयोग 1951 में गठित किया गया था और अब तक पंद्रह वित्त आयोगों का गठन किया जा चुका है। उनमें से प्रत्येक को अद्वितीय चुनौतियों का सामना करना पड़ा है।

वित्त आयोग की आवश्यकता

- केंद्र अधिकांश कर राजस्व एकत्र करता है, और कुछ करों के संग्रह के माध्यम से बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था में योगदान देता है।
- स्थानीय मुद्दों और जरूरतों को करीब से जानते हुए, राज्यों की जिम्मेदारी है कि वे अपने क्षेत्रों में जनहित का ख्याल रखें।
- हालांकि, इन सभी कारणों से कभी-कभी राज्य का खर्च उनके द्वारा प्राप्त राजस्व से अधिक हो जाता है।
- इसके अलावा, व्यापक क्षेत्रीय असमानताओं के कारण, कुछ राज्य दूसरों की तुलना में पर्याप्त संसाधनों का अधिक लाभ उठाने में असमर्थ हैं। इन असंतुलनों को दूर करने के लिए, वित्त आयोग राज्यों के साथ साझा किए जाने वाले केंद्रीय धन की सीमा निर्धारित करने की सिफारिश करता है।

वित्त आयोग के कार्य दायित्व:

- भारत के राष्ट्रपति को सिफारिश करना कि संघ और राज्यों के बीच करों की शुद्ध आय को कैसे वितरित किया जाए, और राज्यों के बीच इस तरह की आय का आवंटन।
- अनुच्छेद 275 के तहत संचित निधि में से राज्यों को अनुदान/सहायता दी जानी चाहिये।
- राज्य वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर पंचायतों और नगर पालिकाओं को संसाधनों की आपूर्ति के लिए राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए आवश्यक कदमों की सिफारिश करना।

- देश के सुदृढ़ वित्त के हित के संदर्भ में राष्ट्रपति द्वारा दिया गया कोई अन्य विशिष्ट निर्देश।
- आयोग अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता है, जिसे राष्ट्रपति द्वारा संसद के दोनों सदनों में रखा जाता है।
- प्रस्तुत सिफारिशों के साथ एक स्पष्टीकरण ज्ञापन भी रखा जाता है, ताकि प्रत्येक सिफारिश के संबंध में की गई कार्रवाई का पता चल सके।
- वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशें सलाहकार प्रकृति की होती हैं, इसे स्वीकार करना या न करना सरकार पर निर्भर करता है।

संविधान में परिकल्पित संघीय ढांचे के तहत, अधिकांश कराधान शक्तियां केंद्र के पास हैं, लेकिन अधिकांश खर्च राज्यों द्वारा किया जाता है। इस तरह के संघीय ढांचे के लिए केंद्र से संसाधनों के हस्तांतरण की आवश्यकता होती है, जो राज्यों को आयकर और अप्रत्यक्ष करों जैसे उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क के रूप में कर लगाता है और एकत्र करता है। इसलिए राज्य की जनसंख्या, राज्य की वित्तीय स्थिति, राज्य के वन क्षेत्र, आय असमानता और क्षेत्र के आधार पर विभिन्न राज्यों के बीच संसाधनों का उचित आवंटन आवश्यक है। इस तरह के उचित आवंटन से, वित्त आयोग राज्यों और केंद्र के बीच संघर्ष को रोक सकता है।

14. The Uniform Civil Code(UCC) is neither necessary nor desirable, because unified nation does not mean uniformity. Discuss the merits and demerits of the Civil Code.

"समान नागरिक संहिता न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय है, क्यों की एकीकृत राष्ट्र का आशय एकरूपता होना नहीं है।" सामान सिविल संहिता के गुणों एवं दोषों की विवेचना करें ।

भारतीय संविधान के भाग-4 (राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत) के तहत, अनुच्छेद-44 के अनुसार, भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता होगी। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि भारत के सभी धर्मों के नागरिकों के लिए एक समान धर्मनिरपेक्ष कानून होना चाहिए। संविधान के संस्थापकों ने राज्य के नीति निदेशक तत्वों के माध्यम से इसे लागू करने की जिम्मेदारी बाद की सरकारों को हस्तांतरित कर दी।

भारत में अधिकांश पर्सनल लॉ धर्म पर आधारित हैं। हिंदू, सिख, जैन और बौद्ध धर्मों के व्यक्तिगत कानून हिंदू कानून द्वारा शासित होते हैं, जबकि मुस्लिम और ईसाई धर्मों के अपने व्यक्तिगत कानून होते हैं। मुसलमानों का कानून शरीयत पर आधारित है, जबकि अन्य धार्मिक समुदायों के व्यक्तिगत कानून भारतीय संसद द्वारा बनाए गए कानून पर आधारित हैं। अभी तक गोवा एकमात्र ऐसा राज्य है जहां समान नागरिक संहिता लागू है।

धर्मों के बीच भेदभाव को समाप्त करने के साधन के रूप में समान नागरिक संहिता के गुण:

1. यह धर्म को व्यक्तिगत कानूनों से अलग करेगा। साथ ही यह पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए न्याय के मामले में समानता सुनिश्चित करेगा, चाहे वे किसी भी धर्म के हों।
2. विवाह, उत्तराधिकार, तलाक आदि के संबंध में सभी भारतीयों के लिए कानून की एकरूपता सुनिश्चित करना।
3. इससे महिलाओं की स्थिति में सुधार करने में मदद मिलेगी, क्योंकि भारतीय समाज काफी हद तक पितृसत्तात्मक है, जिसमें प्राचीन धार्मिक नियम पारिवारिक जीवन को नियंत्रित करते हैं और महिलाओं को अधीन करते हैं।
4. जाति पंचायत जैसे अनौपचारिक निकाय पारंपरिक कानूनों के आधार पर निर्णय देते हैं। एक समान संहिता पारंपरिक कानूनों के बजाय वैधानिक कानूनों का अनुपालन सुनिश्चित करेगी।
5. यह भारतीय अखंडता को मजबूत करने में सहायक हो सकता है, क्योंकि व्यक्तिगत कानूनों में एकरूपता विभिन्न समुदायों को करीब लाने के लिए अनुकूल वातावरण बनाती है।

समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) का दोष:

- समान नागरिक संहिता का मुद्दा किसी सामाजिक या व्यक्तिगत अधिकारों के मुद्दे से हटकर एक राजनीतिक मुद्दा बन गया है, इसलिये जहाँ एक ओर कुछ राजनीतिक दल इस मामले के माध्यम से राजनीतिक तुष्टिकरण कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर कई राजनीतिक दल इस मुद्दे के माध्यम से धार्मिक ध्रुवीकरण का प्रयास कर रहे हैं।
- हिंदू धर्म या किसी अन्य धर्म के मामलों में परिवर्तन उस धर्म के बहुमत के समर्थन के बिना नहीं किया गया है, इसलिए धार्मिक समूहों के स्तर पर राजनीतिक और न्यायिक प्रक्रियाओं के साथ-साथ मानसिक परिवर्तन के लिए प्रयास करना आवश्यक है।
- मिश्रित संस्कृति की विशेषता को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि समाज में किसी भी धर्म के प्रति असंतोष से अशांति की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

समाज की प्रगति और समरसता के लिए उस समाज में विद्यमान सभी दलों में समानता की भावना का होना बहुत आवश्यक है। इसलिए यह अपेक्षा की जाती है कि बदलती परिस्थितियों को देखते हुए समाज की संरचना बदलनी चाहिए। अभी देश में विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के लोगों के लिए। विवाह, संतान गोद लेना, संपत्ति या विरासत आदि के संबंध में अलग-अलग नियम हैं। इसलिए, एक धर्म में जो कुछ भी प्रतिबंधित है, वही बात अन्य संप्रदायों में खुले तौर पर अनुमति है।

आजादी के बाद से ही सभी धर्मों के लिए ऐसा कानून बनाने की बात होती रही है जो सभी पर समान रूप से लागू हो। हालांकि, अभी तक आम सहमति नहीं बन पाई है। अतीत में हिंदू कोड बिल और अब तत्काल तीन तलाक पर कानून को इस दिशा में एक बड़ा कदम माना जा रहा है।

15. Courts in India are believed to be fraught with long overdue cases, but the structure of the problem is something that we know very little about till now. What is the probable cause for such scenario? Suggest an outline of various measures to solve this problem.
भारत के न्यायालयों को लंबे समय से लंबित मामलों से भरा हुआ माना जाता है, लेकिन समस्या की बनावट कुछ ऐसी है जिसे हम अब तक बहुत कम जानते हैं।ऐसे परिदृश्य के लिए संभावित कारण क्या है? इस समस्या को हल करने के लिए विभिन्न उपायों की एक रूपरेखा का सुझाव दीजिए।

प्रसिद्द दार्शनिक जान राल्स ने अपनी कृति 'A Theory of Justice' में यह माना है कि 'न्याय सामाजिक संस्थाओं का प्रथम एवं प्रधान सद्गुण है अर्थात सभी सामाजिक संस्थाएँ न्याय के आधार पर ही अपनी औचित्यपूर्णता को सिद्ध कर सकती हैं।' भारत में भी न्यायिक व्यवस्था का अपना अलग महत्त्व है। यदि भारतीय न्यायिक व्यवस्था का छिद्रान्वेषण करें तो हम पाते हैं कि न्यायाधीशों की कमी, न्याय व्यवस्था की खामियाँ और लचर बुनियादी ढाँचा जैसे कई कारणों से न्यायालयों में लंबित मुकदमों की संख्या बढ़ती जा रही है तो वहीं दूसरी ओर न्यायाधीशों व न्यायिक कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ता जा रहा है। न्याय में देरी अन्याय कहलाती है लेकिन देश की न्यायिक व्यवस्था को यह विडंबना तेज़ी से घेरती जा रही है। देश के न्यायालयों में लंबित पड़े मामलों को आँकड़ा लगभग करोड़ पहुँच गया है। 3.5

समस्याओं का कारण

- देशभर के न्यायालयों में न्यायिक अवसंरचना का अभाव है। न्यायालय परिसरों में मूलभूत सुविधाओं की कमी है।
- भारतीय न्यायिक व्यवस्था में किसी वाद के सुलझाने की कोई नियत अवधि तय नहीं की गई है, जबकि अमेरिका में यह तीन वर्ष निर्धारित है।
- केंद्र एवं राज्य सरकारों के मामले न्यायालयों में सबसे ज्यादा है। यह आँकड़ा %70के लगभग है। सामान्य और गंभीर मामलों की भी सीमाएँ तय होनी चाहिये।
- न्यायालयों में लंबे अवकाश की प्रथा है, जो मामलों के लंबित होने का एक प्रमुख कारण है।

- न्यायिक मामलों के संदर्भ में अधिवक्ताओं द्वारा किये जाने वाला विलंब एक चिंतनीय विषय है, जिसके कारण मामलें लंबे समय तक अटके रहते हैं।
- न्यायिक व्यवस्था में तकनीकी का अभाव है।
- न्यायालयों तथा संबंधित विभागों में संचार की कमी व समन्वय का अभाव है, जिससे मामलों में अनावश्यक विलंब होता है।

लंबित न्यायिक कार्य को कम करने का उपाय:

- जिन मामलों में अपराधी दो वर्ष से अधिक समय से हिरासत में हों, ऐसे पुराने मामलों को निपटाने के लिए न्यायिकअधिकारियों हेतु वार्षिक लक्ष्य और कार्य योजनाओं को निर्धारित किया जाना चाहिए।
- न्याय निर्णयन की गुणवत्ता से समझौता कर वादों का जल्दबाजी में निपटान किए जाने जैसे कदाचार पर अंकुश लगाने केलिए न्यायिक अधिकारियों के प्रदर्शन की त्रैमासिक समीक्षा अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए।
- रिक्त पदों को शीघ्रतापूर्वक भरा जाना, न्यायालय की अवसंरचना सुधार एवं न्यायिक भर्ती परीक्षाओं के मानकों कीस्थापना इत्यादि जिला न्यायाधीशों की गुणवत्ता में सुधार के लिए अन्य उपाय हैं।
- न्यायाधीशों के चयन में अनुभव की जाने वाली अनियमितताओं पर विचार किए जाने की आवश्यकता है; इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तुत की गई राष्ट्रीय जिला न्यायाधीश भर्ती परीक्षा पर अनिवार्य रूप से गंभीर चिंतन किया जाना चाहिए।
- वृद्धि संबंधी उपाय जैसे कि कार्यस्थगनों को प्रतिबंधित करना, ग्रीष्म अवकाशों पर अंकुश लगाना, और रियल टाइम निगरानी के साथ न्यायालयी कार्यवाही की दृश्यश्रव्य रिकॉर्डिंग परिवर्तनकारी प्रभाव उत्पन्न करेगी।-
- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित समितियों जैसे न्यायमूर्ति एमजगन्नाथ राव समिति द्वारा प्रदत्त अनुशंसाओं की जाँचपड़ताल .) करके केस फ्लो मैनेजमेंटCase Flow Management :CFM) नियमों को समाविष्ट किया जा सकता है।
- फास्ट ट्रैक न्यायालयों के साथसाथ-, विवाचन arbitration), मध्यस्थता, सुलह जैसे वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्रों को प्रोत्साहित करना।
- यातायात से संबंधित वादों को सामान्य न्यायालयों से पृथक करना।
- अधीनस्थ न्यायाधीशों की गुणवत्ता में, भर्ती के स्तर पर और साथ ही कार्य पर प्रशिक्षण के दौरान सुधार करना।

उपर्युक्त सभी बातों को देखते हुए स्पष्ट है कि भारतीय न्याय तंत्र में विभिन्न स्तरों पर सुधार की दरकार है। यह सुधार न सिर्फ न्यायपलिका के बाहर से बल्कि न्यायपालिका के भीतर भी होने चाहिये। ताकि किसी भी प्रकार के नवाचार को लागू करने में न्यायपालिका की स्वायत्तता बाधा न बन सकें। न्यायिक व्यवस्था में न्याय देने में विलंब न्याय के सिद्धांत से विमुखता है, अतः न्याय सिर्फ होना ही नहीं चाहिये बल्कि दिखना भी चाहिये।

16. "The discretion of the Governor cannot be arbitrary or fanciful". In the context of any such application, more attention is needed. Comment on it.

"राज्यपाल का विवेकाधिकार, मनमाना या काल्पनिक नहीं हो सकता". इस प्रकार के किसी भी अनुप्रयोग के सन्दर्भ में और अधिक ध्यान देने की आवश्कता है . टिपण्णी करें .

यह एक स्वीकृत सिद्धांत है कि संसदीय लोकतंत्र में सरकार के एक जिम्मेदार रूप के साथ, राज्य के संवैधानिक या औपचारिक प्रमुख के रूप में राज्यपाल की शक्तियों को वास्तविक कार्यकारी, जैसे-मंत्रिपरिषद की कीमत पर नहीं बढ़ाया जाना चाहिए।सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने में राज्यपाल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि वह केंद्र और राज्य सरकार के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है। इस भूमिका के तहत उसे अनुच्छेद 163(1) और अनुच्छेद 163(2) के अनुसार कुछ

विवेकाधीन शक्तियों प्राप्त हैं। इन शक्तियों के अनुसार यदि कोई मुद्दा राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों से संबंधित है तो उसका निर्णय अंतिम होगा। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यपाल को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं।

परन्तु, इन शक्तियों के व्यापक निरूपण (wide formulation) तथा अविवेकपूर्ण इस्तेमाल के कारण विभिन्न चिंताएँ उत्पन्न हुई हैं। **उदाहरणार्थ:**

- अनुच्छेद 200 और 201: राज्यपाल को किसी भी विधेयक पर अपनी स्वीकृति रोकने के साथ-साथ उस विधेयक कोराष्ट्रपति के विचार हेत आरक्षित करने की शक्ति प्राप्त है। राज्यों द्वारा आरोप लगाया जाता है कि इस प्रावधान का राज्यपाल द्वारा केंद्र के इशारे पर प्रायः दुरुपयोग किया जाता है।
- अनुच्छेद 356: राज्य में संवैधानिक आपात लागू करने की संस्तुति करना। राजनीतिक लाभ हेतु केंद्र सरकार द्वारा इस शक्ति का अब तक लगभग 120 बार दुरुपयोग किया जा चुका है।
- अनुच्छेद 164: मुख्यमंत्री की नियुक्ति। त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में सरकार बनाने के लिए एक दल को आमंत्रित करने के राज्यपाल के विवेकाधिकार पर प्राय: प्रश्न उठाये जाते हैं। गोवा और मणिपुर के चुनाव इसके हालिया उदाहरण हैं।
- राज्यपाल को संविधान का परिरक्षण, सरंक्षण और बचाव करने का कर्तव्य सौंपा गया है। हालाँकि राज्यपाल प्रायः केंद्र केअभिकता के रूप में ही कार्य करते हैं।

आगे की राह:

- इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्यपालों की नियुक्ति और उनके कार्यकाल से संबंधित प्रावधानों में बड़े सुधारों की आवश्यकता है।
- वर्ष 1970 में गठित राजमन्नार समिति की सिफारिशों को लागू किया जाना चाहिये और राज्यपालों की नियुक्ति प्रक्रिया में राज्यों को भी शामिल किया जाना चाहिये। उल्लेखनीय है कि केंद्र-राज्य समीकरणों में असंतुलन को दूर रखने की शुरुआत इस तरह के सुधार से की जा सकती है।
- राज्यपालों द्वारा लिये गए निर्णयों को न्यायिक जाँच के अधीन लाया जाना चाहिये जिसमें उस निर्णय तक पहुँचने के लिये प्रयोग किये गए स्रोत भी शामिल हों।
- राज्यपाल के कार्यालय से जुड़ी शक्तियाँ और विशेषाधिकार जवाबदेही तथा पारदर्शिता के साथ संलग्न होने चाहिये।
- राज्यपाल को अपने दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन करने में सक्षम बनाने के लिये राज्य सरकारों, केंद्र सरकार, संसद और राज्य विधानसभाओं द्वारा अनुमोदित एक 'सहमत आचार संहिता' विकसित की जानी चाहिये।
- राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों पर अंकुश लगाया जाना चाहिये और मुख्यमंत्री की नियुक्ति को लेकर उचित दिशा-निर्देश होने चाहिये।

राज्यपाल के विवेकाधिकार को सीमित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ वाद में कहा गया कि राज्य कार्यपालिका पर संघीय कार्यपालिका का नियंत्रण भारतीय संविधान की मूल भावना के विरुद्ध है। सरकारिया आयोग की रिपोर्ट में भी कहा गया है कि, "कार्यवाही के चयन का सीमित क्षेत्र भी मनमाना नहीं होना चाहिए। यह चयन ऐसा हो जिसमें तर्कों के आधार पर चर्चा, सद्भावना द्वारा उत्प्रेरण और सावधानी के साथ तैयारी का समावेश हो।" इसके साथ ही यदि राज्यपाल संविधान की रक्षा करने में असफल रहे, तो एक नागरिक को यह अधिकार होना चाहिए कि वह न्यायालय के माध्यम से इसके उपचार की मांग कर सके। इस सन्दर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय ने शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य जैसे मामलों के माध्यम से उस पूर्ण उन्मुक्ति (absolute immunity) को दरकिनार कर दिया है, जिसका दावा राज्यपाल के कार्यालय द्वारा किया जा सकता है।

17. Secularism as a content of the idea may be debated, but its validity as a goal is beyond doubt. Analyse it.

विचार की सामग्री के रूप में धर्मनिरपेक्षता पर बहस हो सकती है, लेकिन एक लक्ष्य के रूप में इसकी वैधता संदेह से परे है।विश्लेषण करें.

धर्मनिरपेक्षता जीवन का एक आधुनिक दृष्टिकोण है, जो एक जटिल तथा गत्यात्मक अवधारणा है। इस अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम यूरोप में हुआ। यह एक ऐसी विचारधारा है जिसमें धर्म और धर्म से संबंधित विचारों को इहलोक से संबंधित मामलों से जान बूझकर दूर रखा जाता है अर्थात्, तटस्थ रखा जाता है। धर्मनिरपेक्षता राज्य द्वारा किसी विशेष धर्म को संरक्षण प्रदान करने से रोकती है।

संवैधानिक दृष्टिकोण से धर्मनिरपेक्षता :

- भारतीय परिप्रेक्ष्य में संविधान के निर्माण के समय से ही इसमें धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा निहित थी जो संविधान के भाग-3 में वर्णित मौलिक अधिकारों में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद-25 से 28) से स्पष्ट होती है।
- भारतीय संविधान में पुन: धर्मनिरपेक्षता को परिभाषित करते हुए 42 वें संविधान संशोधन अधिनयम, 1976 द्वारा इसकी प्रस्तावना में 'पंथ निरपेक्षता' शब्द को जोड़ा गया।
- यहाँ पंथनिरपेक्षता का अर्थ है कि भारत सरकार धर्म के मामले में तटस्थ रहेगी। उसका अपना कोई धार्मिक पंथ नही होगा तथा देश में सभी नागरिकों को अपनी इच्छा के अनुसार धार्मिक उपासना का अधिकार होगा। भारत सरकार न तो किसी धार्मिक पंथ का पक्ष लेगी और न ही किसी धार्मिक पंथ का विरोध करेगी।
- पंथनिरपेक्ष राज्य धर्म के आधार पर किसी नागरिक से भेदभाव न कर प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार करता है।

धर्मनिरपेक्षता का महत्त्व:

- भारतीय धर्मनिरपेक्षता अपने आप में एक अनूठी अवधारणा है जिसे भारतीय संस्कृति की विशेष आवश्यकताओं और विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए अपनाया गया है। इसके महत्त्व को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत समझा जा सकता है-
- धर्मनिरपेक्षता समाज में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा तर्कवाद को प्रोत्साहित करता है और एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष राज्य का आधार बनाता है।
- एक धर्मनिरपेक्ष राज्य धार्मिक दायित्वों से स्वतंत्र होता है सभी धर्मों के प्रति एक सहिष्णु रवैया अपनाता है।
- व्यक्ति अपनी धार्मिक पहचान के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है इसलिये वह किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के हिंसापूर्ण व्यवहार के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करना चाहेगा। यह सुरक्षा सिर्फ धर्मनिरपेक्ष राज्य ही प्रदान कर सकता है।
- धर्मनिरपेक्ष राज्य नास्तिकों के भी जीवन और संपत्ति की रक्षा करता है साथ ही उन्हें अपने तरीके की जीवन शैली और जीवन जीने का अधिकार भी प्रदान करता है।
- इस प्रकार धर्मनिरपेक्षता एक सकारात्मक, क्रांतिकारी और व्यापक अवधारणा है जो विविधता को मज़बूती प्रदान करता है।

वैधता को प्रश्नगत करने का कारण :

- धर्म निरपेक्षता के विषय में यह भी कहा जाता है कि यह पश्चिम से आयातित है, अर्थात इसाईयत से प्रेरित है, लेकिन यह ठीक आलोचना नहीं है। दरअसल भारत में धर्मनिरपेक्षता को प्राचीन काल से ही अपनी एक विशिष्ट पहचान रही है, यह कहीं और से आयातित नहीं बल्कि मौलिक है।
- कुछ आलोचकों का तर्क है कि धर्म निरपेक्षता धर्म विरोधी है, लेकिन भारतीय धर्म निरपेक्षता धर्म विरोधी नहीं है। इसमें सभी धर्मों को उचित सम्मान दिया गया है। उल्लेखनीय है कि धर्म निरपेक्षता संस्थाबद्ध धार्मिक वर्चस्व का विरोध तो करती है लेकिन यह धर्म विरोधी होने का पर्याय नहीं है।

- यह आरोप लगाया जाता है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता राज्य द्वारा संचालित होती है। अल्पसंख्यकों को शिकायत है कि राज्य को धर्म के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। उल्लेखनीय है कि तीन तलाक के मसले पर मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड का यह कहना था कि सामाजिक सुधारों के नाम पर राज्य द्वारा निजी कानूनों में दखल दिया जा रहा है। वहीं जैन धर्मावलंबी अपनी संथारा प्रथा का बचाव उसके हजारों सालों से चले आने के आधार पर कर रहे हैं।

सरकार को चाहिये कि वह रुचिपूर्वक इसका सरंक्षण सुनिश्चित करे,क्योकि धर्मनिरपेक्षता को न्यायालय द्वारा संविधान के मूल ढाँचे का हिस्सा मान लिया गया है। धर्मनिरपेक्षता के संवैधानिक जनादेश का पालन सुनिश्चित करने के लिये एक आयोग का गठन भी किया जाना चाहिये। जनप्रतिनिधियों को ध्यान में रखना चाहिये कि एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में धर्म एक विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत और निजी मामला होता है। अंत उसे केवल वोट बैंक के लिये राजनीतिक मुद्दा नहीं बनाया जाना चाहिये। साथ ही राजनीति को धर्म से अलग करके देखा जाना चाहिये।

18. In the context of the question of law, Article-131 of the Indian Constitution is a useful weapon of the Supreme Court to maintain balance between the Center and the State. Prove it

विधि के प्रश्न के सन्दर्भ में , भारतीय संविधान का अनुच्छेद-131, केन्द्र एवं राज्य के मध्य संतुलन बनाये रखने के लिए सर्वोच्य न्यालयाय का एक उपयोगी हथियार है. सिद्ध करें।

अनुच्छेद-131 में वर्णित प्रावधान :

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-131 सर्वोच्च न्यायालय को भारत के संघीय ढाँचे की विभिन्न इकाइयों के बीच किसी विवाद पर आरंभिक अधिकारिता की शक्ति प्रदान करता है। ये विवाद निम्नलिखित हैं-

1. केंद्र तथा एक या अधिक राज्यों के बीच।
2. केंद्र और कोई राज्य या राज्यों का एक ओर होना एवं एक या अधिक राज्यों का दूसरी ओर होना।
3. दो या अधिक राज्यों के बीच।

उपर्युक्त मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता की शक्ति प्राप्त है, जिसका अर्थ है कि देश में कोई अन्य न्यायालय इस प्रकार के विवादों का फैसला नहीं कर सकता है।

अनुच्छेद-131 के अंतर्गत राज्य और केंद्र सरकार के मध्य उन विवादों की सुनवाई की जा सकती है जिनमें विधि या तथ्य का प्रश्न निहित हो और जिन पर राज्य या केंद्र के कानूनी अधिकार का अस्तित्त्व निर्भर करता है।इस प्रकार राजनीतिक भावना से प्रेरित विवादों के निपटारे के लिये इस अनुच्छेद का प्रयोग नहीं किया जा सकता। वर्ष 2016 में सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के बीच विवाद के मामले पर सुनवाई करने हेतु असहमति जताई थी।यदि केंद्र या राज्य के विरुद्ध किसी नागरिक द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष कोई याचिका दायर की जाती है तो उसे इस अनुच्छेद के तहत नहीं लिया जाएगा।

केरल और छत्तीसगढ़ से संबंधित विवाद:

- केरल सरकार ने याचिका दायर करते हुए कहा कि केंद्र द्वारा नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA) का अनुपालन करने के लिये अनुच्छेद- 256 के तहत राज्यों को बाध्य किया जाएगा, जो कि 'स्पष्ट रूप से एकपक्षीय, अनुचित, तर्कहीन और मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाला कृत्य' होगा।
- केरल सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय से अनुरोध किया है कि CAA को संविधान के अनुच्छेद- 14 (विधि के समक्ष समता), अनुच्छेद- 21 (प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता) और अनुच्छेद- 25 (अंतःकरण और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण एवं प्रसार की स्वतंत्रता) के सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाला घोषित किया जाए।

- केरल के अलावा छत्तीसगढ़ सरकार ने भी राष्ट्रीय जाँच एजेंसी (NIA) अधिनियम, 2008 को असंवैधानिक घोषित करने के लिये अनुच्छेद-131 का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष याचिका दायर की है।
- छत्तीसगढ़ सरकार के अनुसार, यह अधिनियम 'पुलिस' के विषय में राज्य सरकारों की संप्रभुता का उल्लंघन करता है। ज्ञात हो कि संविधान की सातवीं अनुसूची के अनुसार, 'पुलिस' राज्य सूची का विषय है।

अनुच्छेद-131 से संबंधित अन्य विवाद:

1. आरंभिक/मूल अधिकारिता को लेकर पहला मामला वर्ष 1961 में पश्चिम बंगाल बनाम भारत संघ का था जिसमें पश्चिम बंगाल सरकार ने संसद द्वारा पारित कोयला खदान क्षेत्र (अधिग्रहण एवं विकास) अधिनियम, 1957 को न्यायालय में चुनौती दी थी।
2. वर्ष 1978 में कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ मामले में न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने निर्णय दिया था कि राज्य को यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है कि उसके कानूनी अधिकार का उल्लंघन किया गया है लेकिन इसमें कानूनी सवाल मौजूद होना चाहिये।
3. उक्त मामले में यह कहा गया था कि अनुच्छेद-131 द्वारा कानून की संवैधानिकता की जाँच की जा सकती है, किंतु वर्ष 2011 में मध्य प्रदेश राज्य बनाम भारत संघ मामले में न्यायालय का निर्णय इससे इतर था। हालाँकि यह मामला भी न्यायालय के तीन जजों वाली पीठ के समक्ष लंबित है।
4. वर्ष 2012 को झारखंड बनाम बिहार राज्य का मामला जिसमें अविभाजित बिहार राज्य में रोज़गार अवधि के लिये झारखंड के कर्मचारियों को पेंशन का भुगतान करने हेतु बिहार के दायित्त्व का मुद्दा शामिल है। यह मामला भी न्यायालय की बड़ी खंडपीठ की सुनवाई के लिये लंबित है।

सर्वोच्च न्यायालय को राजनीतिक रूप से प्रेरित याचिकाओं की सुनवाई से बचने का प्रयास करना चाहिये। साथ ही राज्यों के प्रतिनिधियों को किसी भी कानून के संबंध में अपनी चिंताओं को संसद के समक्ष कानून निर्माण के समय रखना चाहिये।विदित हो कि संघवाद दो तरफ जाने वाली सड़क की तरह है, इसमें दोनों पक्षों को एक-दूसरे की सीमाओं का सम्मान करना चाहिये जिसे संविधान द्वारा निर्धारित किया गया है।जब तक न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से किसी अधिनियम को शून्य अथवा असंवैधानिक घोषित नहीं किया जाता, तब तक राज्य केंद्रीय कानूनों को लागू करने के लिये बाध्य हैं।

19. Even though the law has been able to curb the evil of defections to a great extent, but recent developments in the Indian political scene have underscored the need for a review to tighten all the flaws. Make analysis.

भले ही दल-बदल विरोधी कानून बहुत हद तक दोषों की बुराई पर अंकुश लगाने में सक्षम रहा है, लेकिन भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में हाल की घटनाओं ने सभी खामियों को दूर करने के लिए एक समीक्षा की आवश्यकता को रेखांकित किया है।इसका विश्लेषण करें.

दसवीं अनुसूची, जिसे सामान्य रूप से दल-बदल विरोधी कानून के रूप में जाना जाता है, को संविधान में 52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 के माध्यम से जोड़ा गया था।

दल-बदल विरोधी कानून के मुख्य प्रावधान:

दल-बदल विरोधी कानून के तहत किसी जनप्रतिनिधि को अयोग्य घोषित किया जा सकता है यदि:

- एक निर्वाचित सदस्य स्वेच्छा से किसी राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है।
- कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
- किसी सदस्य द्वारा सदन में पार्टी के पक्ष के विपरीत वोट किया जाता है।

- कोई सदस्य स्वयं को वोटिंग से अलग रखता है।
- छह महीने की समाप्ति के बाद कोई मनोनीत सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।

मौजूदा समय में कानून की प्रासंगिकता:

पक्ष में तर्क

- दल-बदल विरोधी कानून ने राजनीतिक दल के सदस्यों को दल बदलने से रोक कर सरकार को स्थिरता प्रदान करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।
- 1985 से पूर्व कई बार यह देखा गया कि राजनेता अपने लाभ के लिये सत्ताधारी दल को छोड़कर किसी अन्य दल में शामिल होकर सरकार बना लेते थे जिसके कारण जल्द ही सरकार गिरने की संभावना बनी रहती थी। ऐसी स्थिति में सबसे अधिक प्रभाव आम लोगों हेतु बनाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं पर पड़ता था। दल-बदल विरोधी कानून ने सत्ताधारी राजनीतिक दल को अपनी सत्ता की स्थिरता के बजाय विकास संबंधी अन्य मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के लिये प्रेरित किया है।
- कानून के प्रावधानों ने धन या पद लोलुपता के कारण की जाने वाली अवसरवादी राजनीति पर रोक लगाने और अनियमित चुनाव के कारण होने वाले व्यय को नियंत्रित करने में भी मदद की है।
- साथ ही इस कानून ने राजनीतिक दलों की प्रभाविता में वृद्धि की है और प्रतिनिधि केंद्रित व्यवस्था को कमज़ोर किया है।

विपक्ष में तर्क

- लोकतंत्र में संवाद की संस्कृति का अत्यंत महत्त्व है, परंतु दल-बदल विरोधी कानून की वज़ह से पार्टी लाइन से अलग किंतु महत्त्वपूर्ण विचारों को नहीं सुना जाता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि इसके कारण अंतर-दलीय लोकतंत्र पर प्रभाव पड़ता है और दल से जुड़े सदस्यों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है।
- जनता का, जनता के लिये और जनता द्वारा शासन ही लोकतंत्र है। लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है, उसकी अनुमति से शासन होता है, उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है। परंतु यह कानून जनता का नहीं बल्कि दलों के शासन की व्यवस्था अर्थात् 'पार्टी राज' को बढ़ावा देता है।
- कई विशेषज्ञ यह भी तर्क देते हैं कि दुनिया के कई परिपक्व लोकतंत्रों में दल-बदल विरोधी कानून जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। उदाहरण के लिये इंग्लैण्ड, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में यदि जनप्रतिनिधि अपने दलों के विपरीत मत रखते हैं या पार्टी लाइन से अलग जाकर वोट करते हैं, तो भी वे उसी पार्टी में बने रहते हैं।

दल बदल कानून में और बदलाव की जरूरत

- वर्तमान में स्थिति यह है कि राजनीतिक दल स्वयं किसी महत्त्वपूर्ण निर्णय पर पार्टी के अंदर लोकतांत्रिक तरीके से चर्चा नहीं कर रहे हैं और पार्टी से संबंधित विभिन्न महत्त्वपूर्ण निर्णय सिर्फ शीर्ष के कुछ ही लोगों द्वारा लिये जा रहे हैं।आवश्यक है कि विभिन्न समितियों द्वारा दी गई सिफारिशों पर गंभीरता से विचार किया जाए और यदि आवश्यक हो तो उनमें सुधार कर उन्हें लागू किया जाए।

दल-बदल विरोधी कानून में संशोधन कर उसके उल्लंघन पर अयोग्यता की अवधि को 6 साल या उससे अधिक किया जाना चाहिये, ताकि कानून को लेकर नेताओं के मन में डर बना रहे। परंतु सदन सदस्य को व्हिप से स्वतंत्रता भी मिले ताकि सत्ता प्रमुख उसकी अनदेखी ना करें ,जैसा अभी माहौल से दृष्टिगोचर हो रहा है।

20. What is a pressure group? How are these useful for Indian democracy? प्रश्न 13: दबाव समूह क्या है ? ये भारतीय लोकतंत्र के लिए किस प्रकार से उपयोगी हैं ?

दबाव समूह प्रशासनिक व्यवस्था के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो गए हैं। ये समूह देश की प्रशासनिक और राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं ताकि उनके हितों को बढ़ावा मिले या कम से कम उनके हितों की उपेक्षा न हो। भारत जैसे विकासशील देश में जहां एक तरफ विभिन्न संसाधनों की भारी कमी है और दूसरी तरफ अत्यधिक गरीबी और असमानता है, वहां प्रशासनिक व्यवस्था पर बहुत दबाव होना तय है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के दबाव समूहों का जन्म होता है। वे स्थिरता तंत्र प्रदान करते हैं और संरचनात्मक संतुलन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाते हैं।

दबाव समूहों की प्रकृति:

- भारत जैसे बहुधार्मिक, बहुभाषाई और लोकतांत्रिक देश में दबाव समूहों की प्रकृति उनके विविध लक्ष्यों से निर्धारित होती हैं। कुछ दबाव समूह जाति समूहों के रूप में भी देखे जा सकते हैं, कुछ सामाजिक संरचना पर आधारित दबाव समूह होते हैं, जैसे- अखिल भारतीय दलित महासभा, तमिल संघ आदि।
- दबाव समूह औपचारिक, संगठित, वृहद और सीमित दोनों ही सदस्यता वाले संगठन होते हैं। लॉबिंग के जरिए यह अपना हित साधने की कोशिश करते हैं। जैसे- फिक्की (FICCI) व एसोचैम(ASSCHAM)।
- राजनीतिक दलों के विपरीत दबाव समूहों की कार्यप्रणाली किसी विचारधारा अथवा वैचारिक लक्ष्य से संचालित नहीं होती। इनका मूल लक्ष्य हितों का संरक्षण, अभिव्यक्तिकरण, समूहीकरण, सरकार पर दबाव डालना आदि होता है।

दबाव समूहों की कार्यपद्धति:

- दबाव समूहों की कार्यपद्धति में अपने हितों का प्रचार-प्रसार, संबद्ध लोगों के साथ वार्ताएँ, लाबिंग, न्यायिक कार्यवाहियाँ, प्रदर्शन हड़तालें, याचना, बंद, धरना, पद का प्रस्ताव करना, सरकार व अधिकारियों के साथ बैठकों-गोष्ठियों आदि का उल्लेख किया जा सकता है।
- दबाव समूह अपनी मांगों को पूरा करने के लिये संबद्ध संस्थाओं व सरकार पर दबाव डालते हैं, मंत्रियों व कर्मचारियों को प्रलोभन देते हैं, चुनावों में राजनीतिक दलों को धन व कार्यकर्ताओं को सुविधाएँ देते हैं। दबाव समूह लोकतांत्रिक मूल्यों और प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करते हैं।

दबाव समूह की भूमिका:

- दबाव समूह जनता एवं सरकार के मध्य एक कड़ी एवं संचार का साधन के रूप में कार्य करते हैं तथा लोकतंत्र में व्यापक भागीदारी संभव बनाते हैं।
- दबाव समूह सामाजिक एकता के प्रतीक हैं क्योंकि ये व्यक्तियों के सामान्य हितों की अभिव्यक्ति के लिये जन साधारण और निर्णय लेने वालों के बीच अंतर को कम करते हैं तथा पूरे समाज में परंपरागत विभाजन को भी कम करने का कार्य करते हैं।
- दबाव समूह एक संगठित हित समूह है जो अपने-अपने समूह के हितों के पक्ष में सरकारी नीतियों को प्रभावित करते हैं तथा राजनीतिक जागरूकता एवं सदस्यों की सहभागिता में वृद्धि करते हैं।

चुनौतियाँ:

- कभी-कभी ये दबाव समूह हित समूह के रूप में राष्ट्रीय एकीकरण के समक्ष खतरे भी उत्पन्न कर देते हैं। जहाँ राजनीतिक सत्ता कमजोर होती है वहाँ अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली दबाव समूह सरकारी मशीनरी को अपनी मुट्ठी में ले सकता है।
- दबाव समूह सरकारी निर्णयों को केवल अपने समूह के पक्ष में असंतुलित कर सकते हैं और शेष जन समुदाय के अधिकारों का हनन हो सकता है।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया में दबाव समूहों को अब अनिवार्य एवं उपयोगी तत्व माना जाने लगा है। समाज काफी जटिल हो चुका है एवं व्यक्ति अपने हितों को स्वयं आगे नहीं बढ़ा सकता है। ज्यादा से ज्यादा सौदेबाजी की शक्ति प्राप्त करने के लिए उसे अन्य साथियों से समर्थन की आवश्यकता होती है एवं इससे समान हितों पर आधारित दबाव समूहों का जन्म होता है। काफी समय से

इन समूहों पर ध्यान नहीं दिया गया लेकिन अब राजनीतिक प्रक्रिया में इनकी भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो चुकी है क्योंकि लोकतांत्रिक व्यवस्था में परामर्श, समझौते एवं कुछ हद तक सौदे के आधार पर राजनीति चलती है। सरकार के लिए यह अतिआवश्यक है कि वह नीति-निर्माण एवं नीति कार्यान्वयन के समय इन समूहों से संपर्क करें। इसके अलावा सरकार को असंगठित लोगों के विचारों को भी जानना आवश्यक है जो लोग अपनी माँगों को दबाव समूहों के माध्यम से नहीं रख पाते हैं।

Join kredoz IAS Geography online class

Download Kredoz the Learning App

Geography Optional Foundation Course + Test Series

Just – 20999/-

kredoz IAS